लेखाञ्जलि

लेखक—

स्व० पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी

प्रकाशक—बैजनाथ केडिया,
श्री हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
ज्ञानवापी, काशी

द्वितीय बार] १९२९ [मूल्य १)

शाखा—

कलकत्ता, पटना, दिल्ली, लाहौर

मुद्रक—रामशरण सिंह, यादव
वणिक प्रेस
साक्षीविनायक, काशी.

प्रकाशकका वक्तव्य

इधर कुछ समयसे हमें अपने प्रेमी ग्राहकोंके सम्मुख इस मालाकी कोई नवीन पुस्तक रखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था; किन्तु आज हमें पाठकोंके हाथोंमें हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ, पुराने साहित्यसेवी, ख्यातनामा "सरस्वती" मासिक-पत्रिकाके भूतपूर्व सम्पादक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकी नवीन रचनाको देते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है। यद्यपि इसमें प्रकाशित सभी लेख पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं तथापि उनकी नवीनतामें कोई कमी नहीं आयी है। अधिकांश लेख ऐसे हैं जो जिस समय भी पढ़े जायँगे, ज्ञान प्राप्त करानेके साथ-साथ मनोरंजन भी पर्याप्त रूपमें करेंगे।

वर्तमान पुस्तकमें विद्वान् लेखकने भिन्न-भिन्न विषयोंके लेखों का इस प्रकार समावेश किया है कि जिनके पठन-पाठनसे भिन्न-भिन्न रुचिके पुरुषोंका मनोरंजन हो और किसीका मन भी न उकतावे। इतिहास-प्रेमियोंके लिये इसमें ऐतिहासिक खोजका पर्याप्त सामान है, शिक्षा-प्रेमियोंकी आकांक्षा भी इससे भली-प्रकार पूर्ण हो सकती है; जिनकी रुचि कृषि-सम्बन्धी विषयोंमें है और जो किसानोंकी भलाईमें प्रयत्न-शील हैं उनको भी निराश होना

नहीं पड़ता; इधर देश-प्रेमियोंको भी अपनी राजनीतिक प्यास बुझानेके लिये कुछ-न-कुछ मिल ही जायगा और जिन लोगोंकी रुचि अद्भुत बातोंको जाननेकी ओर रहती है और जिन्हें विज्ञानसे प्रेम है उनके लिये तो इस पुस्तकमें बहुत-कुछ सामान है। आशा है कि ऐसी सर्वजनप्रिय पुस्तकका आदर हिन्दी-संसार समुचित रूपमें करेगा।

हमारा बहुत समयसे विचार था कि जहां हिन्दीके अधिकांश प्रतिष्ठित विद्वानोंकी रचनाओंका गुम्फन इस मालामें हो चुका है वहां द्विवेदीजी जैसे सर्वमान्य हिन्दी-लेखककी रचनाका इसमें समावेश न होना खटकनेकी-सी बात है। आज हमें उनकी रचनाको प्रकाशित कर इस त्रुटिको दूर करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ है। आशा है पाठकगण इसे अपनाकर हमें इसी प्रकारकी अन्य रचनाएँ भी प्रकाशित करनेके लिये उत्साहित करेंगे।

विनीत—

—प्रकाशक

निवेदन

अज्ञता और निरक्षरता ही अनेक दुःखोंकी जननी है। साक्षर होनेहीसे मनुष्यको ज्ञानप्राप्ति हो सकती है अथवा यह कहना चाहिये कि साक्षरता ही उसकी प्राप्तिका प्रधान साधन है। यह साक्षरता ही, आजकलकी भाषामें शिक्षाके नामसे अभिहित है; क्योंकि जितने शिक्षालय या स्कूल हैं उनमें अक्षरोंहीकी सहायतासे शिक्षाका दान दिया जाता है। शिक्षाकी प्राप्ति अपनी मातृभाषाके द्वारा जितनी सुलभ हो सकती है उतनी पर-भाषाके द्वारा नहीं। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। इसमें अपवादके लिये जगह नहीं। अतएव अपनी भाषाका ज्ञान प्राप्त करना और अपनी भाषाको उन्नत करना प्रत्येक मनुष्यका परम कर्तव्य होना चाहिये।

हमलोगोंकी मातृभाषा हिन्दी है। सौभाग्यसे कुछ समयसे, वह उन्नतिकी ओर धीरे-धीरे अपना पादक्षेप कर रही है। बीस-पचीस वर्ष पहले वह बड़ी ही विपन्नावस्थामें थी। उस समय उसकी ओर बहुत ही कम हिन्दी-भाषा-भाषियोंका ध्यान था—उसकी उस दयनीय दशापर इने-गिने कुछ ही सत्पुरुषोंको दया आती थी। लोग उसे भूले हुए थे। इस दशामें उन्हें जागृत करने और उन्हें उनके कर्तव्यकी याद दिलानेकी बड़ी आवश्यकता थी।

मलेरिया अर्थात् मौसिमी बुखार, दूर करनेके लिये कुनैनसे बढ़कर और कोई दवा नहीं। पर वह होती है महा कटु। अतएव

रोगी उसे नहीं खाना चाहता। इसकी तोड़ वैद्यों और डाक्टरों ने यह निकाली है कि कुनैनको वे शकरके जलावमें लपेटकर दिया करते हैं। इससे रोगीको उसकी कटुताका अनुभव नहीं होता। वह उसे प्रसन्नता पूर्वक खा लेता है और उसका बुखार जाता रहता है। मातृभाषासे विराग होना भी एक प्रकारका रोग और बहुत भयङ्कर रोग है। उस विरागके दूरीकरणके लिये भी उपाय करने पड़ते हैं। वे उपाय ऐसे होते हैं जिनका प्रयोग कड़वी कुनैनके सदृश खले भी नहीं और कार्य-सिद्धि भी हो जाय। उसीकी सिद्धिसे मातृभाषाका प्रेम मनुष्योंमें जागृत हो हो उठता है और वे अपने भूले हुए कर्तव्यके पालनकी ओर आकृष्ट हो जाते हैं।

अपनी भाषा सीखने और उसके शिक्षाप्राप्ति और ज्ञान-सम्पादन करनेके जितने साधन हैं, पुस्तकों और समाचार पत्रोंको पढ़ना उनमें प्रमुख है। परन्तु जबतक मनुष्योंको उन्हें लेने और पढ़नेका चसका नहीं लगता तबतक वे उपदेश सुनकर ही उन्हें मोल लेने और पढ़ने नहीं लगते। अतएव उन्हें वैसा करने के लिये रिझाना, फुसलाना और उनकी खुशामद करना पड़ता है। उनके लिये ऐसे लेख और ऐसी पुस्तकें लिखनी पड़ती हैं जिनके नाममात्र सुननेसे वे उन्हें चावसे पढ़नेकी इच्छा करें। प्रयागके इण्डियन प्रेससे प्रकाशित सरस्वती नामक पत्रिकामें, इस संग्रह पुस्तकके लेखकको, दस-पन्द्रह वर्षतक ऐसे ही लेख लिखने पड़े थे। पाठकोंको इसकी सचाईका ज्ञान इस पुस्तकके आरम्भकी लेख-सूचीसे अच्छी तरह हो जायगा।

इस संग्रहमें कई प्रकारके लेख हैं। वे सब समय-समयपर, आवश्यकतानुसार लिखे गये हैं। हर लेखके नीचे उसके लिखे जानेका समय दिया हुआ है। लेखकका उद्देश सदासे यही रहा

है कि उसके लेखोंसे पाठकोंका मनोरञ्जन भी हो और साथ ही उनके ज्ञानकी सीमा भी बढ़ती रहे। इसीसे उसने अद्भुत जीव-जन्तुओंका वर्णन करके कौतूहलकी उद्दीपना करते हुए महाप्रलय और सौर जगत्की उत्पत्तिके सदृश लेखोंसे गहन विषयोंका भी ज्ञानोत्पादन करानेकी चेष्टा की है। इसी तरह दण्डदेवके आत्म निवेदनके सदृश मनोरञ्जक और कौतुकवर्द्धक लेख लिखकर उसने देहाती पञ्चायतों देशी ओषधियों और किसानोंके सङ्कटनके सदृश देशोपकारी कार्यों की ओर भी पाठकोंका ध्यान आकृष्ट किया है। बात यह कि उसने मनोरञ्जनके साथ ही साथ ज्ञानोन्नतिके उद्देशको भी सदा अपनी दृष्टिके सामने रक्खा है।

इस संग्रहके प्रायः सभी लेख पुराने होनेपर भी पुराने नहीं हो सकते। क्योंकि उनमें ऐसी बातों और ऐसे विषयोंका वर्णन है जिनकी उपयोगिताको समय कम नहीं कर सकता। और यदि वह कम भी हो जाय या नष्ट हो क्यों न हो जाय तो भी क्या हिन्दी भाषाके प्रेमियोंका इतना भी कर्तव्य नहीं कि वे पुराने लेखकोंकी कृतियोंका अवलोकन करके, विस्मृतिके गर्तमें गिर जानेसे उन्हें बचा लें ? वे कृपा करके देखें कि हिन्दी-साहित्यकी प्रारम्भिक अवस्थामें उसकी उन्नतिके लिये, किस-किसने कितने और कैसे प्रयत्न किये थे। इस बातका यत्किञ्चित् ज्ञान उन्हें इस पुस्तकके अवलोकनसे भी हो जानेकी आशा है।

इसमें कुछ अन्य अभिन्नात्माओंके भी लेख सम्मिलित है। एकको छोड़कर और सभी लेख "सरस्वतीसे" उद्धृत हैं।

दौलतपुर, (रायबरेली)
१ जनवरी, १९२८

महावीरप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

लेखांक	लेख-नाम	पृष्ठ

१

भेड़ियोंकी माँदमें पली हुई लड़कियाँ

कोई सौ सवा सौ वर्ष पहले इस देशके प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें जङ्गली हिंस्र जीवोंका बड़ा आधिक्य था। भेड़िये, रीछ, लकड़-बग्घे आदिकी तो बात ही नहीं; शेर, बाघ और हाथीतक घने जङ्गलोंमें घूमा करते थे, और कभी-कभी बस्तियोंके भीतरतक आकर उत्पात मचाते थे। पर अब यह बात नहीं। अब तो शेर, बाघ और हाथी उन्हीं जगहोंमें कुछ रह गये हैं जहाँ घोर जंगल हैं और दूर-दूरतक फैले हुए हैं। इनकी संख्या भी बहुत ही कम रह गई है। भय है कि यदि इन जीवोंका नाश इसी गतिसे होता गया, जिस गतिसे कि इस समय हो रहा है, तो शायद किसी दिन इनका समूल ही नाश हो जायगा। भेड़ियों, रीछों तथा अन्य छोटे-छोटे हिंस्र जानवरोंके विषयमें यह बात चरितार्थ नहीं। कारण यह है कि एक तो उनकी संख्या अधिक है, दूसरे वे छोटे-छोटे जंगलों, नदी-नालोंके कछारों तथा और भी कुछ जगहोंमें रह सकते हैं। और, देहातियोंके पास बन्दूकें न होनेसे उनका नाश भी बहुत ही कम होता है। तथापि वे भी कम ही होते चले जा रहे हैं, क्योंकि सरकारने उनको मारनेवालोंके लिये इनाम मुकर्रर कर दिये हैं।

जिस समय रेल और तारका अस्तित्व न था तथा सड़कें भी

कम थीं उस समय रीछ और भेड़िये प्रायः सभी कहीं बहुत अधिक संख्यामें पाये जाते थे। रीछ तो उतने न थे, पर भेड़िये बहुत अधिक थे। वे कुत्तों, बकरियों, भेड़ों और गाय-भैंसोंके बच्चोंपर दिन-दहाड़े छापा मारते और उन्हें उठा ले जाते थे। यहां तक कि देहातमें यदा-कदा वे छोटे-छोटे लड़कों और लड़कियोंको भी उठा ले जाते और उन्हें मार खाते थे। इस प्रकारकी दुर्घटनाएं अब भी कभी-कभी हो जाती हैं। भेड़ियोंके सम्बन्धमें एक बड़ी ही विचित्र बात सुनी जाती है। सुनी क्या जाती है उसके सच होनेके कितने ही प्रमाण भी मिले और पुस्तकों तकमें लिखे जा चुके हैं। वह यह कि भेड़िये जिन बच्चोंको उठा ले जाते हैं उन्हें वे कभी-कभी मारते नहीं, किन्तु अपनी मांदमें पालते हैं। कोई सौ वर्ष पहले इस देशमें भ्रमण करनेवाले कई अंगरेज़ अफ़सरोंने इन घटनाओंका आंखों देखा वर्णन अपनी पुस्तकोंमें किया है।

जिस समय अवध प्रान्तमें लखनऊके नवाब-वज़ीरोंका राज्य था, उस समय स्लीमन नामके एक साहब लखनऊमें रज़िडेंट थे। उन्होंने अपने समयमें इस सूबेकी देहातमें दूर-दूरतक दौरा किया था। अपने इस भ्रमणमें देखी गई अनेक आश्चर्यजनक बातोंका बड़ा ही मनोरञ्जक वर्णन उन्होंने अपनी एक पुस्तकमें किया है। यह पुस्तक प्रकाशित हुए बहुत समय हुआ। पर शायद बड़े-बड़े पुस्तकालयोंमें यह अबतक उपलब्ध हो। इस पुस्तकमें स्लीमन साहबने कुछ ऐसे लड़कोंका हाल लिखा है जो भेड़ियोंकी मांदमें पले थे और जिन्हें उन्होंने खुद देखा था। मुझे याद पड़ता है कि

इस तरहके लड़कोंके सम्बन्धमें दो एक बड़ेकी मनोरञ्जक लेख किसी मासिक पुस्तकमें बहुत पहले प्रकाशित हो चुके हैं।

अस्तु, पुरानी बातें तो गईं। अब इस तरहकी एक नई घटनाका वर्णन स्टैट्स्मैन आदि अखबारोंमें, अभी कुछ ही समय पूर्व प्रकाशित हुआ है। कलकत्तेमें एक कालेज है। नाम उसका है बिशप्स कालेज बिशप, अर्थात् बड़े पादरी, एच० पेकनहम-वाल्श, उसमें अध्यापक या अधिकारि-पदारूढ़ हैं। उन्होंने ऐसी दो लड़कियोंका हाल प्रकाशित कराया है जो भेड़ियोंकी माँदमें पली थीं और उन्हीं की माँदसे निकाली गई हैं। अब आप अगली बातें पादरी साहबहीके मुखसे सुनिये—

पश्चिमी बंगालमें मिदिनापुर नामका एक शहर है। वह अपने नामके जिलेका सदर मुकाम है। वहाँ एक अनाथालय है। पादरी सिंह और उनकी स्त्री उसकी देख-भाल करती हैं।

पादरी सिंहको कभी-कभी मिदिनापुरके देहातमें भी जाना पड़ता है। एक बार दौरा करते समय उनसे कुछ देहातियोंने कहा कि वहाँ कुछ दूरपर एक ऐसी जगह है जहाँ भूत-प्रेत रहते हैं। इस कारण वे लोग उस तरफ जानेकी हिम्मत नहीं करते। उन्होंने यह भी कहा कि दीमक या चीटोंकी एक बाँबीके पास एक बड़ासा बिल है। उसीमें उन्होंने भूतोंको घुसते प्रत्यक्ष देखा है। इसपर सिंह महाशयने कहा कि जरा वह जगह हमें भी दिखाओ यह बात उन लोगोंने मान ली और अपने साथ ले जाकर उन्होंने वह बिल सिंह महाशयको दिखा दिया। परन्तु वहाँ कोई भूत न

दिखाई दिया। तब पादरी साहबके कहनेसे १६ आदमियोंने उस बिलको खोदना शुरू किया। कुछ देर बाद उससे दो भेड़िये निकले और बड़ी तेजीसे भाग गये। खुदाई जारी रक्खी गई। कुछ देर तक और खोदनेपर एक मादा भेड़िया भीतरसे निकली और बिलके मुंहपर आकर गुर्राने और दांत दिखाने लगी। उसने वहांसे हटना न चाहा; जहाँ खड़ी थी वहीं डटी खड़ी रही। लाचार होकर सिंह महाशयने उसे अपनी बन्दूकका निशाना बनाया। फिर खुदाई शुरू की गई। जब मांदकी तहतक खोदनेवाले पहुंच गये तब उन्होंने देखा कि वहां भेड़ियेके दो बच्चे और दो ही लड़कियां एक दूसरीपर पड़ी हैं। आदमियोंको देखते ही लड़कियां सजग हो गईं। एककी उम्र कोई २ और दूसरीकी कोई ८ वर्षकी थी। उन्होंने भयानक चीत्कार की और जंगली जानवरोंकी जैसी चेष्टा करके वहांसे हाथ-पैरके बल भाग निकलीं। वे इस तेजीसे दौड़ीं कि जो लोग वहां उपस्थित थे उनमेंसे कोई भी उन्हें पकड़ न सका। भागकर वे एक झाड़ीके भीतर घुस गईं। बड़ी मुश्किलोंसे वे किसी तरह पकड़ी गईं। देखनेपर मालूम हुआ कि हाथ पैरके बल जमीनपर चलने और मिट्टी कुरेदनेके कारण उनके नाखून नुकीले हो गये हैं।

मिदनापुरहीमें नहीं, देहातमें सर्वत्र ही किसानोंकी स्त्रियाँ अपने बच्चोंको अपने झोपड़ोंमें सुलाकर खेतपर काम करने चली जाती हैं। कुछ स्त्रियां तो उन्हें अपने साथ भी लेजाती हैं और खेतकी मेंड़ या खेतहीमें उन्हें सुलाकर काम करने लगती हैं। ऐसी जगहोंमें

यदि भेड़ियोंका आधिक्य हुआ तो वे यदा-कदा उन बच्चोंको उठा ले जाते और मार खाते हैं। किसानोंकी स्त्रियाँ लड़कियोंके विषयमें और भी बे-परवाही करती हैं, क्योंकि उनकी शादी आदिमें खर्च बहुत पड़ता है। उससे कोई-कोई कुटुम्ब बहुत कर्जदार हो जाता है। परन्तु इतनी निर्दय माता शायद ही कोई होगी जो अपने बच्चेको भेड़ियोंका शिकार बनानेके लिये उसे खेत पर छोड़ दे। कुछ भी हो, ये दोनों लड़कियां भेड़ियोंहीके द्वारा उठाई जाकर मांदमें पहुँची थीं। इसमें सन्देह नहीं। जान पड़ता है कि लड़कियोंके बदनपर पहनाया गया कपड़ा दांतसे पकड़कर भेड़िया उसे उठा ले गया होगा। पहली लड़की ले जानेके पांच छः वर्ष बाद मादा भेड़िया दूसरी लड़की उठा ले गई होगी। उसने देखा होगा कि पहली लड़की उसके बच्चोंकी तरह जल्द नहीं बड़ी हो गई, वह छोटी ही बनी रही और अधिकतर मांदके भीतर ही रहती रही। इससे उसे खुशी हुई होगी और मिलनेपर दूसरी लड़कीको भी यहां उठा ले गई होगी। परन्तु ये हिंस्र जंतु बच्चोंको मारकर खा जानेके बदले उन्हें पालते क्यों हैं, इसका कारण अभीतक ज्ञात नहीं हो सका।

सिंह महाशयने इन दोनों लड़कियोंको देहातियोंहीके सिपुर्द कर दिया और कहा कि हम गाड़ी लेकर पीछेसे आवेंगे और इन्हें ले जायँगे। देहातियोंने लड़कियोंको एक बाड़ा बनाकर उसके भीतर रख दिया। मिस्टर सिंह लौटे तो उन्होंने देखा कि लड़कियोंके बदनपर सर्वत्र फोड़ेसे हो रहे हैं और ये बहुत ही कमजोर,

प्राय: म्रियमाण दशामें हैं। पास पहुंचनेपर उन्होंने विशेष उछल-कूद न की। वे भागी भी नहीं। सिंह महाशय उन्हें गाड़ीपर रखकर अपने अनाथालयमें ले आये। वहां उनकी स्त्रीने उनको खिलाने-पिलाने और रखनेका भार अपने ऊपर लिया। पर छोटी लड़कीको अतिसार हो गया और वह मर गई। बड़ी लड़की धीरे-धीरे चङ्गी हो गई। इस समय बड़ी लड़की क़दमें अपने उम्रकी लड़कियोंके बराबर ही है।

अनाथालयमें आनेपर देखा गया कि लड़कियोंके आंखोंकी पुतलियाँ या ढेले उसी तरह घूमते हैं जिस तरहकी जानवरोंकी आँखोंके घूमते हैं। वे बैठती भी उसी तरह हैं जिस तरह जानवर बैठते हैं। कच्चा मांस उन्हें बहुत प्रिय था। कोई चीज खाने या पीनेके पहले वे उसे सूंघ लेती थीं। मांस यदि कहीं दूर भी रक्खा होता तो गन्धसे वे जान लेती थीं कि वह कहांपर है और झट वहीं पहुँच जाती थीं। मांस देखनेपर उनकी लार टपकने लगती थी और जबड़े हिलाने लगते थे। वे दांत भी पीसने लगती थीं और एक अजीब तरहका शब्द करती थीं। अनाथालयके बच्चोंकी सङ्गति उन्हें पसन्द न थी। हां, कुत्तों, बिल्लियों और मुर्गियोंके साथ रहना उन्हें अधिक पसन्द था। कपड़ोंसे वे नफ़रत करती थीं। पहनानेसे वे उन्हें फाड़ डालती थीं। रातको वे एक दूसरीपर लदकर, कुत्तेके बच्चोंकी तरह, सो जाती थीं। सोनेके पहले बड़ी लड़की बाहरसे घासफूस उठा लाती। उसीको बिछाकर दोनों एक दूसरीपर पड़ रहती थीं।

छोटी लड़की तो मर गई। बड़ी लड़की इस समय १४ वर्षकी है। अब वह कपड़े पहनने लगी है। पहले खूब कसकर तंग कपड़े उसे पहनाये जाते थे जिसमें वह उन्हें फाड़ न डाले। धीरे-धीरे कपड़े फाड़नेकी उसकी आदत जाती रही। अब तो उसने बँगला भाषा के कुछ शब्द भी याद कर लिये हैं। किसीके आनेपर अब वह हाथ जोड़कर "नमस्कार" कहने लग गई है। उसे चुपचाप रहना अधिक पसन्द है। घंटों वह मौन बनी बेकार बैठी रहती है। नाम उसका रक्खा गया है—कमला। वह यद्यपि अब भेड़ियोंकी सदृश भूंकती नहीं, तथापि हंसना या रोना वह अबतक नहीं जानती। पकड़े जानेके बहुत दिन बादतक वह भेड़ियोंहीकी तरह मुँहसे चीज उठाकर खाती और उसी तरह पानी पीती थी। पर अब उसने हाथसे खाना सीख लिया है। खेलना-कूदना उसे पसन्द नहीं। उसे खिलौने या गुड़िया यदि दी जाती हैं तो उन्हें काटकूटकर फेंक देती है। उसकी यह आदत धीरे-धीरे छूट रही है। पर अबतक वह नहाना नहीं चाहती। सिंह महाशयकी स्त्रीहीसे वह विशेष प्रेम करती है, और किसीसे नहीं। मिस्टर सिंह कहते हैं कि कुछ ही दिनोंमें उसकी असभ्यता जाती रहेगी और उसमें स्वाभाविक स्त्रीत्व पूरे तौरपर आ जायगा।

२

प्राचीन कालके भयंकर जन्तु

प्राणिविद्या, भूगर्भविद्या, खनिजविद्या, कीट-पतंग विद्या आदि जितनी प्राकृतिक विद्याएं हैं उनका अध्ययन करनेके लिये प्रत्यक्ष अनुभवकी बड़ी आवश्यकता होती है। केवल पुस्तकोंके सहारे इन विद्याओंका अध्ययन अच्छी तरह नहीं किया जा सकता। इसीसे प्रत्येक देशमें अजायबघर और पुराणवस्तु-संगृहालय स्थापित किये जाते हैं। कलकत्तेमें भी ऐसे अजायबघर और संग्राहालय हैं। ऐसे संगृहालयोंमें अध्ययनशीलोंके सुभीतेके लिये भिन्न-भिन्न विषय-विभागोंसे सम्बंध रखनेवाले पदार्थोंका नया-नया संगृह दिन-पर-दिन बढ़ता ही रहता है।

पुराण-वस्तु-संगृहालयोंके प्राणिविद्या-सम्बंधी विभागमें प्रायः सभी जीव जन्तुओंके शरीरों और भूगर्भ विद्या विशारदोंके द्वारा आविष्कृत प्राचीन समयके जीव-जन्तुओंके कंकालोंका संगृह किया जाता है। परन्तु, प्राचीनकालके जन्तुओंके कंकालमात्र देखनेसे देखनेवालोंको उन जन्तुओंकी आकृतियों और डील-डौलका पूरा पूरा ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। इस कारण अब विद्वान् और विज्ञानवेत्ता लोग, पुस्तकोंमें लिखे हुए वर्णनोंके अनुसार कङ्कालों-की बनावटको आधार मानकर, उन जन्तुओंकी मूर्तियां बनाने

लगे हैं।

जर्मनीमें हैम्बर्गके पास स्टेलिंजन (*Stellingen*) नामक एक शहर है। वहां कार्ल हेजनबेक (*Carl Hagenback*) नामक एक महाशयकी विख्यात पशु-शाला है। इस पशु-शालामें अति प्राचीन समयके भयङ्कर जन्तुओंकी अनेक मूर्तियां बनवाकर रक्खी गई हैं। जिन जन्तुओंकी ये मूर्तियां हैं उनका वंश नाश हो चुका है। अब वे कहीं नहीं पाये जाते। करोड़ों वर्ष पूर्व वे इस पृथ्वी पर विद्यमान थे।

जर्मनीके प्रसिद्ध पशु-मूर्तिकार जे० ःपालेनबर्ग (*J. Pallenberg*) ने इन मूर्तियोंका निर्माण किया है। येआश्चर्य जनक मूर्तियां सिमेंटकी बनाई गई हैं और एक छोटेसे जलाशयके इर्द-गिर्द—चारों तरफ—रक्खी गई हैं। जलाशयका विस्तार सात-आठ बीघेमें है। कुछ मूर्तियां पानीके पास ही, तटसे लगी हुई झाड़ियोंके भीतर खड़ी की गई हैं। कुछ पानीके भीतर भी हैं। वे हैं मगरों, घड़ियालों आदि जलचर जीवों की। कई मूर्तियोंमें ये जन्तु अपने सजातियोंके साथ लड़ते-भिड़ते भी दिखाये गये हैं।

सबसे पहले जो मूर्त्ति बनाई गई थी वह इगुएनोडन नामके एक जन्तुकी है। यह प्राणी एक प्रकारका तृणभोजी जन्तु था। इसकी लम्बाई बहुधा ८० फुट तक पहुँच जाती थी। उक्त पशु-शालामें इस जन्तुकी लम्बाई कोई ६६ फुट है। यह जीव अब संसारमें नहीं पाया जाता, इसकी जाति ही नष्ट हो गई है। १८९८ ईसवीमें इसी तरहके और भी कोई पच्चीस नमूने तैयार

किये गये थे। जिन कंकालोंको देखकर ये नमूने तैयार किये गये थे वे सब बेलजियम देशके बर्निसार्ट नामक स्थानकी कोयलेकी खानसे निकले थे। इस जन्तुके चार पैर होते थे। आगेके पैर छोटे और पीछेके बड़े होते थे। प्राणि-विद्या-विशारदोंका अनुमान है कि इस जन्तुको केवल पिछले पैरोंके सहारे भी चलने का अभ्यास था। इसके अगले पैरोंकी उंगलियां कटारके सदृश होती थीं। उनकी लम्बाई १८ इंच तक थी। यह २५ फुट तक ऊंचा उठ सकता था। उस अवस्थामें इसका सिर आस-पासके पेड़ोंकी चोटीसे भी ऊपर निकल जाता था।

पूर्वनिर्दिष्ट नमूनोंको यथाशक्ति विशुद्ध बनानेकी पूरी चेष्टा की गई है। मूर्तिकारने इस कार्य्यका आरम्भ करनेके पहले इंगलैण्डके प्रायः सभी पुराण-वस्तु-संग्रहालयोंको देखा, विज्ञान विशारदोंसे इस विषयमें सम्मतियां लीं और जितने कङ्काल आज तक इस तरहके प्राप्त हुए हैं सबके चित्र बनाये। इसके सिवा न्यूयार्क (अमेरिका) के आश्चर्यजनक पदार्थालयके अधिकारियोंने भी मूर्तिकारको कितने ही बहुमूल्य चित्र और हड्डियोंकी माप आदि देकर उसकी सहायता की। इस प्रकार आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके मूर्तिकारने पहले कुछ मिट्टीके नमूने तैयार किये। फिर उन्हें प्रतिष्ठित विज्ञान-वेत्ताओंके पास सम्मतिके लिये भेजा। जिस नमूनेके विषयमें कुछ मत-भेद हुआ उसे तोड़कर उसने दूसरा नमूना बनाया और फिर उसे विद्वानोंके पास अवलोकनार्थ भेजा। जब सब नमूने विशुद्ध स्वीकृत हो गये तब

उनके आधारपर सिमेंटकी बड़ी-बड़ी मूर्तियां बनाई गईं।

इन मूर्तियोंमें छिपकलीकी जातिके कई महाभयंकर प्राणियोंकी भी मूर्तियाँ हैं। ये प्राणी कोई ५० लाखसे लेकर एक करोड़ वर्ष पहले पृथ्वीपर जीवित थे। इन सबके चार-चार पैर होते थे। इनमेंसे कितनेही जीव इगुएनोडनकी तरह केवल पिछले पैरोंके बल भी चल सकते थे। किन्तु अधिकांश प्राणी चारों पैर जमीनपर रखकर ही चलते थे। जब वे जमीनपर घूमते थे तब कोई एक वर्ग गज भूमि उनके पैरोंके नीचे छिप जाती थी। विद्वानोंका अनुमान है कि जल और थल दोनों जगह रहनेवाले प्राचीन समयके जन्तुओंमें यही जन्तु सबसे बड़े थे। इनके रूप और आकारमें परस्पर बहुत अन्तर होता था। किसीका चमड़ा चिकना होता था, किसीका ढालके चमड़ेकी तरह मोटा और सख्त। इनमेंसे एक दो शाक-भोजी थे; शेष सब मांस-भोजी।

उक्त-पशुशालामें डिप्लोडोकस नामक जन्तुकी भी एक मूर्ति है। उसकी भी लम्बाई ६६ फुट है। इस जन्तुका एक कंकाल अमेरिकाके एक आश्चर्यजनक पदार्थालयमें रक्खा है। यह मूर्ति उसीके आधारपर बनाई गई है। यह कंकाल १८९९ ईसवीमें मिला था।

प्राणि-विद्याके वेत्ताओंने निश्चित किया है कि डिप्लोडोकसकी पूँछ छिपकलीकी पूँछकी तरह होती थी और खूब मोटी होती थी। उसकी गर्दन शुतुर्मुर्गकी गर्दनकी तरह लम्बी और लचीली होती थी। बदन छोटा, पर बहुत मोटा होता था। पैर हाथीके

पैरोंकी तरह बड़े और मोटे होते थे।

जीवितावस्थामें इन जन्तुओंका वजन ६७५से ८१० मनतक होता रहा होगा। ये जन्तु जलमें भी रहते थे और आवश्यकता होनेपर थलमें चले आते थे। किन्तु उथले जलमें रहना ये अधिक पसन्द करते थे और घास-पात आदि खाकर जीवन-निर्वाह करते थे। यद्यपि इन जन्तुओंका आकार चतुष्पाद जन्तुओंमें सबसे बड़ा था,तथापि ये आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ थे। इसीसे बहुधा इनसे छोटे भी मांसभक्षक जन्तु इन्हें मार डालते थे। इनका मस्तिष्क बहुत छोटा होता था। इसीसे शायद ये अपनी रक्षा न कर सकते थे, क्योंकि बड़ा मस्तिष्क आत्मरक्षा करनेकी अधिक शक्ति और अधिक बुद्धि रखनेका प्रदर्शक है।

इन प्रकाण्ड जन्तुओंके नामोंकी कल्पना यद्यपि अलग-अलग भी की गई है, तथापि ये सब एक ही साम्प्रदायिक नामसे अभिहित होते हैं। वह नाम है—डाइनोसौर (*Dionosaur*) जो संस्कृत शब्द दानवासुरसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह नाम बहुत ही अन्वर्थक है। जीवधारियोंमें, उस समय, ये निःसन्देह असुर या दानवके अवतार थे।

उक्त पशुशालामें एक और जन्तुकी मूर्ति है। उसका नाम स्टेगोसौरस (*Stegosaurs*) कल्पित किया गया है। यह जन्तु अपनी श्रेणीके जन्तुओंमें सबसे अधिक बलवान् था। इसकी लम्बाई कोई २५ फुट थी। इसकी पीठपर बहुत कड़े छिलके या दायरेसे होते थे। कोई-कोई छिलकाव्यासमें एक-एक गज होता था।

इसकी पूँछपर लम्बे लम्बे आठ कांटे होते थे। इस अद्भुत जंतुके पन्द्रह बीस कङ्काल एक पहाड़पर अध्यापक मार्शको मिले थे। इन कङ्कालोंके दांतोंकी बनावट देखकर विद्वानोंने निश्चय किया है कि ये जीवधारी वनस्पति-भोजी थे।

डाइनोसौर श्रेणीका एक और विलक्षण जन्तु ट्राइसरट्राप (*Tricertrop*) कहाता है। इस जन्तुकी भी ठठरियाँ पहाड़ों-पर मिली हैं। इसकी खोपड़ी कोई सात फुट लम्बी है और त्रिकोणावृत्ति है। खोपड़ीकी हड्डीमें भी विलक्षणता पाई जाती है। यह जन्तु कई बातोंमें दरियाई घोड़े और गैंड़ेसे मिलता-जुलता जान पड़ता है। किन्तु इसमें दरियाई घोड़ेसे एक विशेषता है। वह यह कि इसकी पीठकी हड्डीके टुकड़े गोल हैं और इसके मस्तकपर तीन सींग हैं। इसका भी मस्तिष्क बहुत छोटा होता था। अध्यापक मार्शका मत है कि इसके अङ्गोंकी बनावट बहुत अस्वाभाविक होनेके कारण ही इसकी जाति नष्ट हो गई। पशु-शालामें इस जन्तुके दो नमूने रक्खे गये हैं। एकमें यह जन्तु जलाशयके किनारे, पानीके भीतर, खड़ा दिखाया गया है। दूसरे-में वह पानीमें आधा डूबा हुआ है।

डाइनोसौर श्रेणीके जन्तुओंकी उत्पत्तिके पहले पृथ्वीपर प्लेसिओसौरियन (*Plesiosaurian*) अर्थात् एक प्रकारकी सामुद्रिक छिपकलियोंका निवास था। उनकी शकल-सूरत आधी मछलीकी और आधी सरीसृपकी थी। उनकी गर्दन लम्बी होती थी और सिर छिपकलीके सिरकी तरहका। दांत घड़ियालके

दाँतोंसे मिलते-जुलते थे। डैने ह्वेलके डैनोंके समान होते थे। वे जलके भीतर भी तैर सकते थे और उसकी सतहके ऊपर भी। ऊपर तैरते समय वे पास उड़ती हुई चिड़ियोंको लपककर पकड़ लेते और उन्हें निगल जाते थे।

पुराकालके इन भयङ्कर जन्तुओंके, सब मिलाकर कोई, तीस नमूने बनाये और पूर्वोल्लिखित पशु-शालामें रक्खे गये हैं। उनमें कई घड़ियालों, विलक्षण मछलियों और डैनेवाली छिपकलियों-की भी मूर्तियां हैं। कुछ मूर्तियां जलाशयके जलमें तैरती हुई भी दिखाई गई हैं।

ऊपर जिन मूर्तियोंका वर्णन किया गया है उनमेंसे अधिकांश मूर्तियाँ एकसे अधिक संख्यामें तैयार करके अलग भी रख दी गई हैं। कुछ मूर्तियाँ बड़ी, कुछ छोटी, कुछ मंझोले आकारकी हैं। वे सब बेचनेके लिये हैं। जो चाहे खरीद सकता है। प्राणि-विद्या-में प्रवीणता प्राप्त करनेके इच्छुकोंको इस प्रकारकी मूर्तियाँ देखने और उनके अवयव तथा संगठनका ज्ञान प्राप्त करनेसे बहुत लाभ होता है।

[फरवरी १९२३]

३

एक अद्भुत जीव

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च"—यह संसारका अटल नियम है। यह कभी टल नहीं सकता। जो पैदा होता है वह मरता जरूर है। एक भी प्राणी ऐसा नहीं जो मृत्युके पञ्जेसे बच सके। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, सरीसृप, वृक्ष, लता आदि सभी पैदा होते और मरते हैं। परन्तु इस लीलानिकेतन विश्वमें कुछ ऐसे भी अद्भुत जीव हैं जिनकी मृत्यु नहीं होती—जो सदा जीवित रहते हैं; अथवा यह कहना चाहिये कि जिनके मरने-जीनेका पता मनुष्यको नहीं। सम्भव है, संसारके पूर्व निर्दिष्ट नियमके अनुसार वे भी जन्म-मरणके जालसे न बचे हों; परन्तु वे कब, किस तरह मरते हैं, यह बात विज्ञान-वेत्ता भी अबतक नहीं जान पाये।

जलाशयोंके पेंदेमें एक प्रकारके अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी होते हैं। उनके शरीरमें जरा भी जटिलता नहीं होती। उनकी देह सूक्ष्म-कोश-मय होती है। उसमें अङ्ग-प्रत्यङ्ग बिलकुल नहीं होते। अच्छा, यह कोश होता कैसा है? यह एक अत्यन्त स्वल्प थैली सी होती है, उसमें किसी गाढ़े, पर तरल पदार्थका एक बिन्दु-मात्र भरा रहता है। कभी-कभी इस थैलीका भी पता नहीं लगता,

केवल बिन्दुमय पतला पदार्थ ही देख पड़ता है। यह पदार्थ स्वच्छ और वर्णविरहित होता है। न यह बहुत पतला ही होता है और न जमाही हुआ। हाँ, गाढ़ा अवश्य होता है। जीवनी शक्तिका जैसा विकास इस पदार्थमें देख पड़ता है वैसा अन्यत्र नहीं। जान पड़ता है, मानों जीवनका आदि लीलाक्षेत्र यही है। अंगरेजीमें इसे प्रोटोप्लाज्म अर्थात् प्राणिजीवनका मूलतत्त्व कहते हैं। इस प्रोटोप्लाज्महीसे जीवनका विकास होता है। यदि किसी प्रकार प्रोटोप्लाज्म तैयार किया जा सके तो मनुष्यद्वारा प्राणि-जीवनकी सृष्टि करना शायद सम्भव हो जाय। योरपके विज्ञान-वेत्ताओंने आशाकी थी कि रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा जैसे अनेक जटिल रासायनिक मिश्रण तैयार किये जा सकते हैं। वैसे ही प्रोटोप्लाज्म भी तैयार किया जा सकेगा और उसकी सहाय-तासे मनमाने पदार्थोंमें जीवनी शक्ति सञ्चारित की जा सकेगी। परन्तु अनवरत श्रम, उद्योग और गवेषणा करनेपर भी उनकी सभी परिक्षाएं अबतक व्यर्थ सिद्ध हुई हैं। अतएव उनकी वह आशा अद्यावधि दुराशा ही बनी हुई है।

विज्ञानवेत्ता पहले समझते थे कि अन्यान्य रासायनिक यौगिक पदार्थोंकी तरह प्रोटोप्लाज्म भी वैसा ही कोई पदार्थ है। परन्तु उनकी यह धारणा निराधार ज्ञात हुई है। वे जान गये हैं कि इस पदार्थका रहस्य समझनेमें अबतक उनकी बुद्धि काम नहीं दे सकी। कोई भी वैज्ञानिक इस पदार्थका विश्लेषण करके यह नहीं बता सका कि इसमें किन-किन रसों, तत्त्वों या मूल पदार्थों

का योग है। इस विषयमें इसकी जटिलता देखकर बेचारे विज्ञान-विशारदोंकी पैनी बुद्धि भी चक्कर खा रही है।

जीवनके मूलरूपको जीवनकोश कहते हैं। खुर्दबीनके द्वारा देखनेसे मालूम हुआ है कि जीवनकोशमें तैलबिंदु, श्वेत, सारबिंदु आदि कई जटिल रासायनिक पदार्थोंके कण मौजूद हैं। जीवन-कोशके भीतर एक और भी क्षुद्र कोश होता है। वह सूक्ष्माति-सूक्ष्म आवरणसे परिवेष्ठित रहता है। उसे अन्तःकोश (*Nucleus*) कहते हैं। उसके भीतर भरा हुआ पदार्थ और भी रहस्यमय होता है। वह जीवनकोशके रससे कुछ अधिक गाढ़ा होता है। अन्तः-कोशके रस या धातुमें जिन रासायनिक पदार्थोंका मेल या मिश्रण रहता है, वे जीवनकोशके मिश्रणसे बिलकुल ही भिन्न होते हैं। अर्थात् दोनोंमें दो तरहके रस रहते हैं। दोनोंकी क्रिया-शक्तिमें भी भिन्नता होती है। विज्ञानवेत्ताओंको पता लगा है कि अन्तःकोशके बीचमें कुछ तन्तु-सदृश पदार्थ भी होते हैं।

अन्तःकोशमें जितने पदार्थ होते हैं, वे सभी जीवनके आदि तत्व हैं। जीवनकोश, जड़ पदार्थोंकी तरह निर्जीव नहीं होते। उनमें सजीवोंकी सी चेष्टा पाई जाती है। वे भी एक प्रकारके प्राणी हैं। जलाशयोंकी तहमें, कीचड़के ऊपर, इस प्रकारके चेतन-चेष्टा-विशिष्ट एककोशी जीव ढेरके ढेर पाये जाते हैं। वे कई प्रकारके होते हैं। उनमेंसे सबसे अधिक सरल देहधारी जीवको आमिबा कहते हैं।

आमिबा प्राणि-जगत्‌की आदिम और निकृष्टतम प्रजा है।

वह बड़ा ही अद्‌भुत जीव है। उसके एक भी अवयव नहीं होता। उसके विषयमें कोई यह नहीं कह सकता कि उसका आकार क्या है। वह गोल होनेपर भी लम्बा होता है। हस्तपाद-विहीन होने-पर भी वह अनेक पाद और अनेक हस्तधारी होता है। निर्मुख होनेपर भी मुखमय कहा जा सकता है। यद्यपि उसके पेट नहीं, तथापि उसके उदरयुक्त होनेमें सन्देह नहीं। उसके नासा नहीं, तिसपर भी उसका सर्वांश नासिकाका काम देता है। मतलब यह कि जिस चेतना-विशिष्ट धातुसे आमिबाका शरीर बना होता है उसका कोई निर्दिष्ट आकार तो नहीं, पर काम वह सभी अवयवोंके देता है।

खुर्दबीनमें आंख लगाकर देखनेसे मालूम हुआ है कि आमिबा स्थान-परिवर्तन भी करता है। उसके पैर, पंख, डैने आदि कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं, परन्तु चलता वह अवश्य है। अपने अद्‌भुत आकारका संकोचन, प्रसारण और परिवर्तन करके आगे बढ़ता या पीछे हटता है। यही उसका चलना है—यही उसकी गति है।

आमिबाको काहिली या निष्क्रियतासे घृणा है। वह बड़ा ही क्रियाशील प्राणी है और कुछ-न-कुछ किया ही करता है। कभी वह सिकुड़ता, कभी फैलता, कभी लम्बा हो जाता और कभी वर्तुलाकार बन जाता है। कभी वह चक्राकार धारण कर लेता है और कभी तारकाओंके जैसे रूपमें परिवर्तित हो जाता है। वह इतना मायाव है कि इन्द्रजालके सदृश सैकड़ों आश्चर्यजनक खेल खेला ही करता है। उसके बहुरूपियेपनका यह हाल है कि उसका नन्हासा

शरीर प्रतिक्षण भेष बदलता ही रहता है। कभी-कभी वह अपनी देहसे, कितने ही स्पर्शकारक तन्तु, उँगलियोंकी तरह बाहर निकाल देता है और फिर उन्हें जरा ही देरमें भीतर समेट लेता है।

श्वासक्रियाके लिये आमिबाकी देहमें कोई अवयव या यन्त्र नहीं। परन्तु उसका श्वासोच्छ्वास-कार्य निरन्तर और अनवरत बराबर चलता रहता है। जलमें जो वायु मिली रहती है उसीसे वह अपने शरीरके सर्वांश-द्वारा आक्सिजन नामक वायु ग्रहण करता है और फिर उसी शरीरके द्वारा अङ्गारक वायुको बाहर निकाल देता है। बस इसी तरह उसका जीवन-यन्त्र सतत चलता रहता है।

आमिबा भिन्न-भिन्न आकार धारण करता हुआ अपने स्थान का परिवर्तन करता रहता है। इस परिवर्तनके समय यदि उसका कोई स्पर्श करनेवाला तन्तु या देहका अंश किसी क्षुद्र उद्भिज्ज या प्राणिज पदार्थसे छू जाता है, तो वह अपनी कोमल देह उस पदार्थकी तरफ ठेल देता है। ऐसा करनेसे वह पदार्थ आमिबाकी तरह देहज धातु-द्वारा पूर्णरूपसे परिवेष्टित और आवृत हो जाता है। अथवा यह कहना चाहिये कि वह पदार्थ उसकी देहके भीतर चला जाता है, वह उसका खाद्य बन जाता है। आमिबा इसी तरह भोजन करता है। कुछ ही देरमें वह ग्रस्त या भुक्त पदार्थ आमिबाकी देहके साथ पूर्णतया न सही, आंशिक रूपसे अवश्य ही सम्मिलित हो जाता है। यदि उसका कुछ अंश आमिबाकी देहसे

संश्लिष्ट नहीं हो सकता, तो वह वहां चिपका नहीं रहता; तत्काल ही बाहर फेंक दिया जाता है। मतलब यह कि जितनी खूराक वह हजम कर सकता है, उतनी ही ग्रहण करता है; अवशिष्ट अंशको वह निकाल बाहर करता है। आमिबाके न पेट है, न मुँह। अर्थात् वह आहार्य्य पदार्थ ग्रहण करनेके लिये कोई अङ्ग या अवयव नहीं रखता, तथापि उसकी देहके जिस अंशसे आहार्य्य पदार्थ छू जाता है वही उसका मुँह हो जाता है और उसीके द्वारा वह उसे अपने पेट या आमाशयमें पहुँचा देता है। इस प्रकार आमिबा मुख-विवरहीन होनेपर भी भोजन करता है और उदरदरी-हीन होने-पर भी खाद्यवस्तुको हजम कर लेता है।

आमिबा विवेक-शक्ति भी रखता है और उसकी वह शक्ति बहुत तीव्र भी होती है। वह खाद्याखाद्य वस्तुओंको खूब पहचानता है। चलते-फिरते समय दैवात् यदि उसकी देहसे बालुका कण, लकड़ी या तृणका कोई टुकड़ा, या और ही कोई अखाद्य वस्तु छू जाय, तो वह तुरन्त पीछे हट आता है; उसे ग्रहण नहीं करता। उस निःसार पदार्थको एक तरफ छोड़कर वह दूसरी तरफसे आगे बढ़ता है। आमिबाके शरीरसे यदि किसी उत्तेजक या अवसादक पदार्थका संसर्ग किया जाय, तो वह सहम उठता है। वह जान जाता है कि यह पदार्थ मेरे लिये घातक है। अतएव या तो वह उससे भागता है या वहीं निर्जीव सा होकर चुपचाप रह जाता है।

सुभीतेके साथ भोजन मिलने और बहुत खा जानेसे आमि-बाकी देह शीघ्र ही मोटी-ताजी हो जाती है। पेटके भीतर यथेष्ट

भोज्यपदार्थोंके जाने और हज़म होनेसे शरीरकी पुष्टि और वृद्धि होना अवश्यम्भावी है। पर इस पुष्टि और वृद्धिकी भी सीमा होती है। इसलिये आमिबाका शरीर उस सीमाका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। कुछ दिनोंतक बढ़नेके बाद उसकी देहमें एक अद्भुत व्यापार सङ्घटित होता है। उसके कारण ही उसकी शरीर-वृद्धि वहीं रुक जाती है। शरीरके उपचयकी सीमाका अन्त हो जानेपर आमिबा मन्थरगति हो जाता है। उस समय उसके देह-कोशके मध्यभागमें स्थित अन्तःकोशके दो टुकड़े हो जाते हैं। वह दो भागोंमें विभक्त हो जाता है। वे दोनों भाग देहकोशके दोनों ओर अलग-अलग अवस्थित हो जाते हैं। इस परिवर्तनके साथ ही साथ देहकोशका मध्यभाग सङ्कुचित होने लगता है। यह सङ्कोचन क्रम-क्रमसे बढ़ता जाता है। फल यह होता है कि कुछ समयके उपरान्त यह बिलकुल ही लुप्त हो जाता है और एकके बदले दो देहकोश अस्तित्वमें आ जाते हैं। अर्थात् एकके दो आमिबा हो जाते हैं।

पूर्व-निर्दिष्ट दोनों आमिबा अपने मूलभूत पहले आमिबाके अर्द्धांश होते हैं। अर्थात् उनमेंसे प्रत्येक आमिबा मूल आमिबाके आधे-आधे अंशके बराबर होता है। ये दोनों आमिबा पहले आमिबाहीके सदृश चलते-फिरते और खाते-पीते हैं। यथासमय बड़े होकर वे भी नई सृष्टि उत्पन्न करते हैं। अर्थात दोके चार हो जाते हैं। यह क्रम बराबर जारी रहता है और यदि कोई दुर्घटना न हुई, तो चारके आठ, आठके सोलह, और सोलहके बत्तीस हो

जाते हैं। उनका वंश-विस्तार इस तरह आगे भी होता ही जाता है। इन प्राणियोंमें स्त्रीत्व और पुंस्त्वका भेद नहीं होता। सन्तानोत्पादनके लिये वे नर-मादाकी योजनाकी अपेक्षा नहीं करते।

अच्छा, तो जब एक अमिबाके दो अमिबा हो जाते हैं तब प्रथम आमिबा क्या नष्ट हो जाता है, अथवा मर जाता है? नहीं, यह बात नहीं। उसका वह अंश अवसन्न नहीं पड़ा रहता। वह अपना नित्य-नैमित्तिक काम भी नहीं बन्द करता। जिस दशामें नया रहता है उसी दशामें पुराना भी। अर्थात् बाप-बेटे तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं। बेटेके जुदा होनेकी तैयारी होनेपर बापको कुछ शिथिलता जरूर प्राप्त हो जाती है; परन्तु वह निष्क्रिय नहीं हो जाता। कुछ-न-कुछ वह फिर भी किया ही करता है। दोनोंके जुदा-जुदा हो जानेपर तो बाप बेटे अपने-अपने काममें जी-जानसे लग जाते हैं। इनके इस क्रिया-कलापको देखकर यह सन्देह होता है कि कहीं ये अमर तो नहीं; क्योंकि इनकी मृत्युका दृश्य विज्ञान-विशारदोंके देखनेमें नहीं आया।

(सङ्कलित)

[अक्टूबर १९२३]

४

अद्भुत मक्खियाँ

ईश्वरकी सृष्टिमें अनेक जीव-जन्तु ऐसे हैं जिनकी विचित्रता का वृत्तान्त सुनकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। अभी कुछ ही समय पूर्व, जान जे वार्ड (*John J. Ward*) नामक एक सज्जनने एक प्रकारकी अद्भुत मक्खियोंका पता लगाया है। इन मक्खियोंकी विचित्रताका हाल सुनकर प्राणितत्त्व-वेत्ता अवाक् रह जाते हैं।

वार्ड साहब कई सालसे अपने बागीचेमें देख रहे थे कि एक नियत समयपर बहुत सी मक्खियाँ आकर गुलाबके पौधोंपर बैठ जाती हैं। दो चार दिनके भीतर ही ये मक्खियाँ इतनी अधिक हो जाती हैं कि इनसे बागीचेके प्रायः सभी पेड़ पौधे ढक जाते हैं। वार्ड साहब इनकी इस बढ़तीपर बड़े चकित हुए। वे अनुसन्धान करने लगे कि एकाएक ये मक्खियाँ इसी समय यहाँ कैसे आ पहुंचती हैं और इनकी इतनी अधिक वृद्धि इतनी जल्दी कैसे हो जाती है। बहुत दिनोंके बाद वार्ड साहबको इनके विषयमें जो बातें मालूम हुईं वे बहुत ही कौतूहल-जनक हैं।

वार्ड साहब कहते हैं कि शरदृतुके अन्तिम भागमें ये मक्खियाँ उनके बागीचेमें आती हैं। इनका आकार साधारण मक्खीसे कुछ

छोटा होता है। रङ्ग इनका हरा होता है। बागीचेमें आते ही ये वहांके वृक्षोंके पत्तोंपर अण्डे देने लगती हैं। अण्डोंके साथ ही एक प्रकारका रस निकलता है। इस रसके प्रभावसे अण्डे वृक्षोंके पत्तोंपर चिपक जाते हैं। अण्डोंका ऊपरी भाग मजबूत होता है, इसी कारण अधिक-से-अधिक ठण्ढ पड़नेपर भी इन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। वसन्तका प्रारम्भ होते ही अण्डे फूटने लगते हैं। अण्डोंसे स्त्री-जातीय बच्चे निकलते हैं। इनके पंख नहीं होते। तीन-चार दिनके भीतर ही ये बढ़कर बड़े हो जाते हैं। इन अण्डोंसे पुरुष-जातीय मक्खियां नहीं पैदा होतीं। पुरुष-जातीय मक्खियोंके न होनेपर भी नई पैदा हुई मक्खियां बच्चे जनती हैं। इनके भी बच्चे स्त्री-जाति हीके होते हैं। पर ये अण्डोंसे नहीं, माताके गर्भसे निकलते हैं। इनके भी पंख नहीं होते। बाई साहब लिखते हैं कि ये मक्खियां केवल शरदृतुके अन्तिम ही भागमें अण्डे देती हैं; और समयमें बच्चे पैदा करती रहती हैं। इसके सिवा सबसे बड़ी आश्चर्यकी बात यह है कि पुरुष-जातिकी मक्खियोंकी सहायताके बिना ही इनके बच्चे पैदा होते हैं।

नवजात पक्षविहीन मक्खियां ज्योंही चार-पांच दिनोंमें बढ़कर बड़ी हो जाती हैं त्योंही उनके पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। बड़े हो जानेपर इन बच्चोंसे भी उसी तरह पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। इस प्रकार इनका यह व्यापार निरन्तर जारी रहता है। किन्तु एक स्थानपर जब ये इतनी बढ़ जाती हैं कि इनके रहनेके लिये काफी जगह नहीं रहती, तब इनके गर्भसे

पंखयुक्त स्त्री-जातीय बच्चे पैदा होते हैं। ये बच्चे उड़कर अन्यत्र चले जाते हैं। वहां जाकर फिर पक्षविहीन स्त्री-जातीय बच्चे पैदा करने लगते हैं।

शरदृतुके अन्तिम भागमें पक्षविहीन मक्खियोंका एक अंतिम दल पैदा होता है। वही अण्डे देता है। उसके पैदा होनेके बाद ही, कुछ दिनोंमें, एक पुरुष-जातीय दल भी पैदा होता है। पुरुष-जातीय मक्खियोंका यह दल वर्षमें एकही बार उत्पन्न होता है, स्त्री-जातीय मक्खियोंका अन्तिम दल, जो अंडे देता है, इसी पुरुष-जातीय दलकी सहायतासे देता है। अण्डे देनेके बाद ही इन दोनों दलोंकी सब मक्खियां मर जाती हैं। इनके अण्डे ही वसंत ऋतुके प्रारम्भमें फूटते हैं और उनसे निकली हुई स्त्री-जातीय मक्खियां क्रमशः अपने-आप ही स्त्री-जातीय पक्षविहीन और पक्षयुक्त बच्चे पैदा करती रहती हैं।

एक प्राणितत्त्व-वेत्ताने हिसाब लगाकर देखा है कि एक-एक मक्खी अपने जीवन-समयमें, अर्थात कई सप्ताहोंके भीतर, छः अरब मक्खियोंके जन्मका कारण होती है।

विलायतमें हक्सले (*Huxley*) नामक एक प्राणितत्त्व-वेत्ता हो गया है। उसका कथन है कि एक मक्खीकी दस पीढ़ियोंकी सब मक्खियां यदि इकट्ठी की जा सकें तो उन सबका वजन इतना होगा जितना कि साढ़े तीन मनके वजनवाले ५० करोड़ मनुष्योंका होता है। इस बढ़तीका कुछ ठिकाना है!

ये मक्खियां वृक्षों और पौधोंके पत्ते, फल-फूल और उनके

नवीन-नवीन अंकुरोंको खाकर अपना जीवन-निर्वाह करती हैं। यदि ये सारी मक्खियां एक साल भी जीवित रहें, तो देशभरमें कहीं कोई अङ्कुरित वृक्ष और पौधे न रह जायँ। पर, प्रकृति-देवी-ने इनके नाशका भी उपाय नियत कर दिया है। सब प्रकारके जीव-जन्तु, कीट-पतङ्ग और पक्षी आदि इन मक्खियोंको अपना आहार बनाते हैं। इस प्रकार उनके द्वारा इनकी करोड़ोंकी संख्या विनष्ट हो जाती है।

वार्ड साहबने इन मक्खियोंके एक प्रबल शत्रुका भी वर्णन किया है। वह एक प्रकारकी बर्र-जातिका कीड़ा है। परन्तु उसका आकार बर्रके आकारसे बहुत छोटा होता है। वह उन हरे रंगकी मक्खियोंका किस प्रकार नाश करता है, सो भी सुन लीजिये—

ये कीड़े अण्डे देनेके समय हरे रंगकी मक्खियोंको ढूंढ़ते फिरते हैं। मक्खियोंको पाकर ये उनमेंसे एकके ऊपर बैठ जाते हैं। फिर ये उस मक्खीके पेटमें अपनी गर्भनली डालकर उसमें अपना अण्डा रख देते हैं। अण्डेके साथ ही एक प्रकारका विषैला रस निकलकर मक्खीके पेटमें भर जाता है और दो-चार दिनके बाद ही वह उसे मार डालता है। इस प्रकार मरी हुई मक्खियां पेड़ों और पौधोंके पत्तों और डालियोंपर पड़ी रहती हैं। कुछ समय बाद बर्र-जातीय कीड़ेका अण्डा फूट जाता है और उसमेंसे बच्चा निकलकर उस हरी मक्खीका मांस खाता रहता है। बड़ा होनेपर वह उड़ जाता है। इस प्रकार बर्र-जातीय कीड़े प्रतिदिन हजारों मक्खियोंका नाश किया करते हैं।

प्रकृति-देवी यदि इन मक्खियोंकी बढ़ती रोकनेका ऐसा उपाय न करती, तो इनसे देश-के-देश सत्यानास हो जाते। सब प्रकारके उद्भिज्ज और अनुद्भिज्ज-भोजी प्राणी संसारसे चल बसते और यहां केवल मक्खियों ही मक्खियोंका साम्राज्य हो जाता।

आप अपने देशके टिड्डी-दल हीको देखिये। टिड्डियोंका असंख्य समूह जब आता है तब किसानोंके होश उड़ जाते हैं। सैकड़ों कोसतक खेती और बाग-बगीचे सफाचट हो जाते हैं। जहाँ सघन वृक्षोंकी गहरी छाया देख पड़ती थी, क्षणभरमें वहीं सूर्यकी किरणोंका प्रखर प्रकाश फैल जाता है। पर इनके नाशका भी प्रबन्ध प्रकृतिदेवीने कर रक्खा है। सैकड़ों प्रकारके पक्षी, सरीसृप आदि इनको अपना आहार बना लेते हैं।

[जून १९२५]

५

महाप्रलय

इस विषयका एक लेख "प्रवासी" में निकल चुका है। वह महत्त्वका है। अतएव उसका सारांश सुन लीजिये। महाभारतमें लिखा है—

ततो दिनकरैर्दीप्तैः सप्तभिर्मनुजाधिप।
पीयते सलिलं सर्वं समुद्रेषु सरित्सु च॥
यच्च काष्ठं तृणञ्चापि शुष्कं चार्द्रञ्च भारत।
सर्वं तद्भस्मसाद्भूतं दृश्यते भरतर्षभ॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भारत।
लोकमाविशते पूर्वमादित्यैरुपशोषितम्॥
ततः स पृथ्वीं भित्वा प्रविश्य च रसातलम्।
देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत॥
निर्दहन्नागलोकञ्च यच्च किञ्चित् क्षिताविह।
अधस्तात् पृथिवीपाल सर्वं नाशयते क्षणात्॥
महाभारत। वनपर्व। १८८ अध्याय। ६५-७१ श्लोक।

अर्थात्—इसके बाद (प्रलयकालमें) चमकते हुए सात सूर्य्य नदियों और समुद्रोंके सब जलको सोख लेंगे। सूखे और गीले सब तृण भस्म हो जायँगे। इसके साथ ही संवर्तक नामक

अग्नि वायुके साथ पृथ्वीपर आकर पातालमें प्रवेश कर जायगी। उससे देव, दानव और यक्ष बहुत डरेंगे। यही अग्नि नाग-लोक और पृथ्वीके सब पदार्थोंको ध्वंस कर डालेगी।

ईसाइयोंके धर्म-ग्रन्थ बाइबिलमें लिखा है—

"Moreover, the light of the moon shall be as the light of the sun, and the light of the sun shall be sevenfold as the light of the seven da s in the day the Lord bindeth the breach of his people, and healeth the stroke of their wound."

Isaiah (*Chapter 30, V.26*)

अर्थात्—प्रलयके दिन चन्द्रमा सूर्यकी तरह प्रकाशमान हो जायगा और सूर्य सात दिनके इकट्ठे प्रकाशकी तरह सतगुना प्रकाशमान होगा।

अन्तिम परिणामके सम्बन्धमें पूर्व और पश्चिमके दो अति प्राचीन ग्रन्थोंका मेल बड़ाही विस्मयकर है।

अब प्रश्न हो सकता है कि महाप्रलयके सम्बन्धमें प्राचीन ऋषियोंने जो भविष्यद्वाणी कही है वह क्या विज्ञान-सम्मत है? एक दलके लोग कहते हैं कि ऋषि लोग अभ्रान्त थे। इसलिये पृथ्वीका ध्वंस शास्त्रमें लिखी हुई विधिके अनुसार ही होगा। ऐसे लोगोंकी युक्तिके विषयमें हम कुछ नहीं कहना चाहते। परन्तु जिस दलके लोग विज्ञानकी सहायतासे ऊपर लिखी हुई प्राचीन उक्तियोंकी सत्यता सिद्ध करना चाहते हैं, वहांपर हम

उन्हीं लोगोंकी बातोंपर विचार करते हैं।

इस दलके कुछ लोगोंका कथन है कि पृथ्वीके भीतरकी अग्नि ही पृथ्वीको ध्वंस करेगी, अर्थात् पृथ्वी अपने ही तापसे भस्म हो जायगी। इस तरह ऋषिवाक्य भी सत्य हो जायगा। परन्तु यह सिद्धान्त विज्ञान-सम्मत नहीं हो सकता; क्योंकि इस बातके कई प्रमाण पाये जाते हैं कि पृथ्वीके भीतरका ताप दिन-पर-दिन कम होता जाता है। इसलिये उसके द्वारा पृथ्वीका ध्वंस होना असम्भव है। इस दलके अन्य लोगोंका मत है कि पृथ्वीकी उत्पत्ति सूर्य्यसे हुई है। वह सूर्य्य ही अकस्मात् प्रज्वलित होकर पृथ्वीको ध्वंस कर देगा। वास्तवमें यही मत आलोचनाके योग्य है।

सौरजगत्में प्रायः हर साल तूफान आते हैं। उन्हींके कारण सूर्यमें धब्बे दिखाई देते हैं। इसमें शक नहीं कि तूफान बड़े ही विकट और भयङ्कर होते हैं। लाखों मील दूर होनेपर भी उनका प्रभाव पृथ्वीपर पड़ता है। परन्तु ऐसे सौरोत्पातका एक भी लक्षण अबतक देखनेमें नहीं आया, जिससे पृथ्वीके एकदम ध्वंस हो जानेकी सम्भावना हो। इसलिये ऐसा मालूम होता है कि सूर्य केवल अपनी ही अग्निसे पृथ्वीको ध्वंस नहीं कर सकता। सूर्य्य तभी एकदम प्रज्वलित हो सकता है जब उसका सङ्घर्षण किसी बाहरी तारे या पिण्डके साथ हो। इसके सिवा किसी अन्य उपायसे पृथ्वीको ध्वंस करनेकी शक्ति रखनेवाला ताप सूर्य्यमें नहीं आ सकता।

किसी नूतन तारेका आकस्मिक आविर्भाव ज्योतिषशास्त्रके

इतिहासमें कोई नई बात नहीं। अभी कुछ ही वर्ष बीते होंगे, जब वृशराशिके पास एक नया तारा पैदा हो गया था। ज्योतिषियोंका कथन है कि दो अनुज्ज्वल तारोंके संघर्षणसे यह तारा उत्पन्न हुआ था। इसलिये क्या यह सम्भव नहीं कि हमारा सूर्य्य भी कभी ऐसे ही तारेसे धक्का खाकर जल उठे ?

इस प्रश्नका उत्तर देना सहज नहीं। हम लोगोंके पहचाने हुए प्रायः सभी तेजस्क पिण्ड सौरजगत्‌से बहुत दूर हैं। यदि सूर्य्य हजारों वर्षतक उनकी ओर बड़ी तेजीसे दौड़े तो भी उन्हें नहीं पा सकता। दक्षिणी आकाशकी एक राशिका एक तारा हमलोगोंके अत्यन्त निकट है। ज्योतिषियोंने हिसाब लगाकर बतलाया है कि सूर्य्य यदि प्रति सेकण्ड दस मीलकी चालसे उस निकटतम तारेकी ओर चले तो कोई अस्सी हजार वर्षमें उसके पास पहुँच सकता है। अस्सी हजार वर्ष बाद सूर्य्यका सङ्घर्ष किसी तारेके साथ होगा या नहीं, इसकी आलोचना यदि न की जाय तो भी कोई हर्ज नहीं। हाँ, दो-चार हजार वर्षके अन्दर सौरजगत्‌में कोई विपद आवेगी या नहीं, इसकी आलोचना करना आवश्यक है।

ज्योतिषियोंका कथन है कि आँखों या दूरबीनके द्वारा जितने तारे या ग्रह देखे जाते हैं उनके सिवा एक जातिके और भी पिण्ड हैं जो सदा आकाशमें घूमा करते हैं। आकार-प्रकारमें वे मामूली नक्षत्रोंहीकी तरह हैं। उष्णता और प्रकाश फैलाते-फैलाते वे अनुज्ज्वल हो गये हैं। इसलिये हमलोग उन्हें नहीं देख सकते हैं।

अतएव अब यह प्रश्न हो सकता है कि सूर्य्य किसी ऐसे अनुज्ज्वल तारेके सङ्घर्षसे क्या प्रज्वलित नहीं हो सकता ? इसके उत्तरमें आधुनिक ज्योतिषी कहते हैं कि यदि किसी समय सूर्य्यके तापाधिक्यसे पृथ्वीका ध्वंस होना सम्भव है तो किसी अनुज्ज्वल तारेके सङ्घर्षहीसे यह बात हो सकती है। बृहस्पति, शनि इत्यादि ग्रह अपने छोटे-छोटे उपग्रहोंको लेकर जैसे आकाशमें दौरा लगाते हैं, वैसेही सूर्य्य भी अपने समस्त सौर-परिवारके साथ आकाशकी एक ओर दौड़ा करता है। सूर्यकी इस गतिका पता लगानेके बाद कुछ दिनोंतक विद्वानोंमें इस बातपर तर्क-वितर्क होता रहा था कि सूर्यकी गति किस ओर है। कुछ ही समय पूर्व यह तर्क द्वन्द्व समाप्त हुआ है। सब विद्वानोंने एकमत होकर मान लिया है कि सौरजगत प्रति सेकण्ड दस मीलकी चालसे अभिजित् नक्षत्रकी ओर दौड़ रहा है। इसलिये यदि सूर्य और अभिजित् नक्षत्रके बीचमें कोई अनुज्ज्वल तारा आ जायगा तो दोनोंके सङ्घर्षसे एक विकट अग्निकाण्ड उपस्थित होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

अध्यापक गोर (*Gore*) एक विख्यात अँगरेज ज्योतिषी हैं। यह सोचकर कि भविष्यत्में सूर्यके साथ किसी अनुज्ज्वल तारेका संघर्ष होना बिलकुल सम्भव नहीं, उन्होंने इसके सम्बन्धमें कुछ दिन हुए गणना करना प्रारम्भ किया था। उसका फल प्रकाशित होगया है। सूर्य और अभिजित् नक्षत्रके बीचमें किसी स्थानपर सूर्यहीकी तरह बृहत् और गतिशील एक अनुज्ज्वल नक्षत्रका अस्तित्व मानकर गणना प्रारम्भ की गयी थी। हिसाब लगानेपर

मालूम हुआ कि जब सूर्य्य और इस कल्पित नक्षत्रका फासला एक अरब पचास करोड़ मील रह जायगा तब इस नक्षत्रके दर्शन हम लोगोंको होंगे। अर्थात् उस समय वह सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित हो जायगा और हम लोगोंको नवम श्रेणीके तारेके समान दिखाई पड़ेगा।

जब दो गतिशील पदार्थ एक दूसरेके निकट होने लगते हैं तब माध्याकर्षणके नियमानुसार उनकी चाल अधिक तेज हो जाती है। इस हिसाबसे सूर्य और उस कल्पित नक्षत्रके बीचकी दूरी एक अरब पचास करोड़ मीलमेंसे एक अरब चव्वालीस करोड़ मील तय करनेमें दोनोंको सिर्फ बारह वर्ष लगेंगे। अर्थात् बारह वर्ष बाद दोनोंके बीचका फासला सिर्फ छः करोड़ मील रह जायगा। उस समय वह कल्पित नक्षत्र पंचम श्रेणीके नक्षत्रकी तरह दिखाई देगा। पंचम श्रेणीके नक्षत्र बहुत उज्ज्वल नहीं होते। इसलिये सूर्यके इतना निकट आनेपर भी सर्वसाधारण भी उसे दूरबीनकी सहायताके बिना न देख सकेंगे। पर इसके बाद दोनोंका फासला इतनी जल्दी कम होने लगेगा कि बादके चार वर्षों में बृहस्पतिकी कक्षाके निकट आकर वह नक्षत्र दो शुक्रों और चार बृहस्पतियोंके समान उज्ज्वल हो जायगा। उस समय इसे द्वितीय चन्द्रमाकी तरह आकाशमें उदित देखकर पृथ्वीवासी अवश्य ही विस्मित होंगे।

इसके बाद सौरजगत् कितने वेगसे उस सहायक नक्षत्रके निकट होने लगेगा, इसका हिसाब भी गोर साहबने लगाया है।

आप कहते हैं कि ५१ दिनमें पृथ्वीकी कक्षा पार करके यह नक्षत्र इतने प्रबल वेगसे सूर्य्यको धक्का देगा कि सौरजगत् क्षणभरमें ध्वंस हो जायगा।

यहांपर यह प्रश्न हो सकता है कि सूर्य्यको धक्का देनेके पहले यह संहारक नक्षत्र जब पृथ्वीकी कक्षाके निकट होगा तब इसके आकर्षणसे पृथ्वीका कोई अनिष्ट हो सकता है या नहीं। गोर साहबने इसके सम्बन्धमें भी गणना की है। उससे मालूम होता है कि यदि यह नक्षत्र किसी सालकी इक्कीसवीं जूनको भू-कक्षाके निकट होगा तो सूर्य्यके पास पहुँचनेके पहले ही वह पृथ्वीको टक्कर मारकर ध्वंस कर देगा। इस दशामें यह नक्षत्र इतने जोरसे पृथ्वीको खींचेगा कि सूर्य्य उसके आकर्षणको किसी तरह न रोक सकेगा। यदि यह नक्षत्र तिरछी चालसे सौरजगत्में प्रवेश करेगा, तो पृथ्वीकी क्या दशा होगी, गोर साहबने इसका भी हिसाब लगाया है। आपके कथनानुसार इस नाक्षत्रिक संहारसे सूर्य तो बच सकता है, पर हमारी पृथ्वीका निरापद रहना असम्भव है। इसलिये मालूम होता है कि महाभारत और बाइबिलने सैकड़ों वर्ष पहले पृथ्वीके अन्तिम परिणामके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं वे एक-दम असम्भव नहीं।

ज्योतिष-शास्त्रकी उन्नतिके साथ-साथ नक्षत्रोंका पर्य्यवेक्षण करनेके उपयोगी बहुतसे यन्त्रोंका आविष्कार हो गया है। इस-लिये अब यदि किसी नये नक्षत्रका आविर्भाव होता है तो वह घटना तुरन्त जान ली जाती है। सौरजगत्के गन्तव्य स्थानमें,

बहुत अनुसन्धान करने पर भी किसी नये नक्षत्रका पता नहीं लगा। इसलिये गोर साहबके कथनानुसार यह प्रकट है कि अभी बहुत समयतक पृथ्वीके ध्वंस होनेकी कोई सम्भावना नहीं। हां, यदि कभी पूर्वोक्त प्रकारका कोई नक्षत्र देख पड़े, तो उसके सोलहवें वर्ष पृथ्वीका ध्वंस निश्चय समझना चाहिये।

[जुलाई १९२१]

६

स्वयंवह-यंत्र

नई चालकी घड़ियोंके प्रचारसे ठीक समय जाननेमें लोगोंको बहुत सुभीता हो गया है। ये घड़ियां पहले-पहल योरपमें बनी थीं और वहींसे हिन्दुस्तानमें आईं। इनका प्रचार हुए सौ-डेढ़ सौ वर्षसे अधिक नहीं हुए। परन्तु उसके पहले, अथवा प्राचीन कालमें भी, निश्चित समय जाननेका साधन लोगोंके पास अवश्य था। जिस यन्त्रके द्वारा प्राचीन कालके लोग समय निश्चित कर सकते थे उसका नाम स्वयंवह-यंत्र था। यह यंत्र कई प्रकार-का होता था। केवल भारतवर्ष हीमें नहीं, किन्तु अन्यान्य देशोंमें भी लोग इसको काममें लाते थे। सुनते हैं कि कहीं-कहीं अब भी समय देखनेका काम इसी यन्त्रसे लिया जाता है।

कई वर्ष हुए, राजशाहीमें बङ्ग-साहित्य-परिषद्का वार्षिक अधिवेशन हुआ था। उसमें अध्यापक योगेशचन्द्ररायने स्वयंवह-यंत्रोंके विषयमें एक लेख पढ़ा था। उस लेखमें अध्यापक महाशयने कितनी ही उपयोगी और ज्ञातव्य बातें कही हैं। इसलिये उसका भावार्थ आज हम पाठकोंको सुनाते हैं।

कालका स्रोत बहता चला जा रहा है। प्राचीन कालके लोग दिनमें सूर्यकी और रात्रिमें ताराओंको देखकर इस स्रोतका

विभाग करते थे। परन्तु दिन-रातके काल भी छोटे नहीं होते; उनके विभागकी भी तो आवश्यकता पड़ती है। इस कामको वे वृक्ष, डण्डा या अपनी देहकी छायासे करते थे।

परन्तु छाया भी सूर्यसापेक्ष है। अर्थात् बिना सूर्यके छाया नहीं हो सकती। जिस दिन मेघोंने कृपा की, उस दिन समय देखना दुःसाध्य हुआ। इसी कठिनताको दूर करनेके लिये ताम्री या घटीका प्रचलन हुआ था। तांबेके घड़ेके नीचेवाले भागसे घटी-यन्त्र बनाया जाता था। घड़ेके पेंदेमें बहुत छोटा-सा छेद होता था। घड़ा पानीके ऊपर रख दिया जाता था। पानी धीरे-धीरे घड़ेमें भरने लगता था। यहांतक कि कुछ देरमें वह डूब जाता था। घड़ा इतना बड़ा बनाया जाता था जिसमें वह दिन-रातमें आठ बार डूब सके। जितने समयमें घड़ा पानीमें एक बार डूब जाता था उतने समयको लोग घड़ी, घटी या घटिका कहते थे। घड़ेमें सात "पल" तक पानी भर सकता था। इसीलिये एक घड़ीमें सात पल माने गये थे। ऋग्वेदाङ्ग ज्योतिषमें घटीके बदले प्रस्थ शब्द आया है। विष्णु-पुराणमें भी प्रस्थ-संज्ञा आई है। जल, तेल आदि प्रवाही पदार्थ जिस पात्रके द्वारा नापे जाते थे उसे लोग प्रस्थ कहते थे। इससे जान पड़ता है कि हमारे देशमें-घटी-यन्त्रका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे है।

परन्तु जिस यन्त्रके द्वारा काल-ज्ञान होनेके लिये लोगोंको बैठे रहना पड़े, वह सबके व्यवहार योग्य कभी नहीं हो सकता। इसीलिये लल्ल आदि ज्योतिषियोंने अपनी इच्छाके अनुसार घटी

बनानेकी सलाह दी है। ब्रह्मगुप्तने जो ईसाकी सातवीं शताब्दीमें वर्तमान थे, एक अन्य प्रकारके घटी-यंत्रका उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि एक नलक (शीशेका पात्र) बनाना चाहिये। उसके नीचे एक छेद करके उसे पानीसे भर देना चाहिये। बहता हुआ पानी जितना-जितना कम होकर एक-एक घड़ीमें नलके जिस-जिस स्थानपर पहुंचता जाय उसी-उसी स्थानपर अङ्क लगा देने चाहिये। इससे सहज हीमें काल-ज्ञान हो सकता है। परन्तु नाड़िका-यंत्रमें यह असुविधा नहीं है। मालूम होता है कि इस नाड़िका यन्त्रके नामहीसे घटी या घड़ीका नाम नाड़ी या नाड़िका पड़ा है।

केवल इसी देशमें नहीं, किन्तु प्राचीन मिस्र, बेबीलोनिया, यूनान और योरपके अन्यान्य देशोंमें भी जल-स्राव देखकर समय जाननेकी रीति प्रचलित थी। प्राचीन कालहीमें क्यों, ईसाकी सोलहवीं शताब्दीमें डेनमार्क-देशके प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् तायको-ब्राहिकी वेधशालामें जल-घड़ीके द्वारा कालका परिमाण जाना जाता था। चीन और भारतवर्षमें अब भी इसका रिवाज है।

पर, हम लोगोंकी ताम्री (घटी) और योरपकी जल-घड़ीमें एक भेद है। वह यह कि इस देशकी ताम्रीमें जलप्रवेश देखकर और योरपमें उससे जलनिस्सरण देखकर काल-ज्ञान होता था। छेदके द्वारा किसी बर्तनसे परिमित जल निकलनेमें सदा एक-सा समय नहीं लगता; क्योंकि बर्तनमें पानी जितना ही कम होता जायगा पानीके बहनेका वेग भी उतना ही कम होता जायगा। इसलिये जलपात्रको सदा जलपूर्ण रखना पड़ता था।

इन दोनोंमें और भी भेद है। यूनानी लोग सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततक दिन मानते थे। उसे वे बारह भागोंमें विभक्त करते थे। उसे एक भागका नाम घण्टा था। इसलिये गर्मीमें उनका घण्टा बड़ा और जाड़ोंमें छोटा होता था। ऐसी असमान-समय-ज्ञापक जल-घड़ी बनाना सहज काम न था। हमारे यहां यह असुविधा न थी।

पूर्वकालमें नाड़िका-यन्त्रसे जल-स्रावके द्वारा नाना प्रकारके यन्त्र चल सकते थे। लल्ल, ब्रह्मगुप्त, भास्कर आदि प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषियोंने ऐसे कितने ही यन्त्रोंका वर्णन किया है। महामहोपाध्याय सामन्त चन्द्रशेखरसिंहने भी एक ऐसे ही यन्त्रकी रचना की है। जो यंत्र आप-ही-आप घूमे, अथवा जिसे कोई मनुष्य न चलावे, उसे प्राचीन कालके लोग स्वयंवह-यन्त्र कहते थे। सामन्त महाशयने अपना स्वयंवह-यंत्र अपनी बुद्धिके बलपर बनाया है; किसी ग्रन्थके सहारे नहीं। उनके यन्त्रका एक चक्र दो आधारों-पर स्थिर रहता है। चक्रके घेरेमें एक डोरा लिपटा रहता है। डोरेका एक सिरा चक्रसे बंधा रहता है और दूसरे सिरेमें पारा-युक्त एक गोलक बँधा रहता है। यह गोलक एक बड़े जलकुण्डमें तैरा करता है। कुण्डका पानी जैसे-जैसे बहता जाता है वैसे-ही-वैसे गोलक भी नीचे गिरता जाता है। साथ ही धागा बँधा हुआ चक्र भी धीरे-धीरे घूमता जाता है।

किसी चीजके हिलनेसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य चीजें भी हिलने लगती हैं। हमारे प्राचीन आचार्यों ने नाड़िका-यन्त्रकी

सहायतासे ग्रहों और नक्षत्रोंका चक्र तक घुमा डाला था। आज-कलके विद्यालयोंमें विलायती 'ओरेरी' यन्त्र जैसा होता है, प्राचीनकालमें गोलकयन्त्र भी वैसा ही था। वह जल-स्रावके द्वारा घूमता था। इसलिये उसमें बड़े भारी शिल्पनैपुण्यकी आवश्यकता थी। उसके द्वारा लग्नों आदिका भी ज्ञान हो सकता था।

हम यह कह आये हैं कि लल्ल और ब्रह्मगुप्तने बहुतसे काल-ज्ञापक यन्त्रोंका उल्लेख किया है। उनमेंसे एक नर-यन्त्र भी है! एक मनुष्य-मूर्त्तिके मध्य भागसे लेकर मुँहतक एक सूराख होता है। उसके पेटमें डोरीकी एक पिण्डी रक्खी रहती है। डोरीका एक सिरा सूराखसे होते और मुँहमें लगी हुई नलीको पार करते हुए बाहर आकर लटकता है। उसी सिरेमें परायुक्त एक गोलक बँधा रहता है। यह गोलक एक कुण्डके पानीपर तैरा करता है। कुण्डसे जल जितना ही बहता जायगा, मनुष्य-मूर्तिके मुँहसे उतनी ही डोरी निकलती आवेगी। एक-एक दण्डमें डोरी जितनी-जितनी बाहर निकलती है, उतनी-ही-उतनी दूरपर उसमें गाँठें लगी रहती हैं। एक दण्डमें एक गांठ, दोमें दो गाठें और तीनमें तीन गाठें बाहर होती हैं। जिस समय जितनी गांठें बाहर निकलती हैं उस समय उतने ही दण्ड बीत चुके, यह बात लोग देखते ही समझ जाते हैं।

इस प्रकारके किसी यन्त्रमें एक नर-मूर्ति दूसरी नर-मूर्तिके मुँहपर पानी फेंकती है; किसी यन्त्रमें वह अपने मुँहसे वधूके मुँहपर गुटिका फेंकता है, किसी यन्त्रमें दो मनुष्य मल्ल-युद्ध

करते हैं; किसीमें मोर सांपको निगलता है; किसीमें मुगरी घण्टे-पर पड़ती है इत्यादि। इन सब कौतुक-जनक यन्त्रोंका उद्देश कालज्ञापनके सिवा और कुछ न था। आज-कल जैसे विलायती घड़ियोंमें नर-नारियोंकी मूर्तियाँ अपने विशेष अङ्ग चलाकर लोगों को विस्मित करती हैं वैसे ही प्राचीन समयमें जल-घड़ियाँ भी करती थीं। आज-कलकी तरह प्राचीन कालमें भी घंटे बजते थे।

कहते हैं कि प्राचीन कालमें अलेग्जांड्रियाके किसी ज्योतिषीने कुण्डसे जल बहाकर एक घटाङ्कित चक्र चलाया था। ईसाकी छठी शताब्दीमें कुस्तुनतुनिया-नगरमें किसीने एक ऐसा यन्त्र बनाया था जिसमें एकसे लेकर बारह तक बजते थे। नवीं शताब्दीमें सम्राट् शार्लमैनने फारिसके बादशाहको एक जल-घड़ी उपहारमें भेजी थी। उसमें बारहों घण्टे प्रकट करनेके लिये बारह द्वार थे। एक-एक घण्टेमें एक-एक दरवाजा खुलता था और जितना बजा होता था उतनी ही गुटिकाएं निकल-निकलकर एक ढोलकपर पड़ती और उसे बजाती थीं।

शिल्पकारका मन एक ही विषयमें सीमाबद्ध नहीं रहता। जो एक यन्त्रका आविष्कार कर सकता है, वह कभी-कभी अन्य यंत्र भी बना सकता है। प्राचीन आर्यों ने पारा, जल, तेल इत्यादिकी सहायतासे चक्र चलानेकी चेष्टा की थी। ऐसे स्वयंवह-यन्त्रका उल्लेख पहले-पहल लल्लने छठी शताब्दीमें किया है। उनके बाद ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य (बारहवीं शताब्दी) ने भी भिन्न प्रकारसे उसीका वर्णन किया है। आगे हम भास्करके यन्त्र-वर्ण-

नका मतलब देते हैं।

पहले बिना गांठ और कीलके काठका एक छोटा-सा चक्र भ्रम-यन्त्रसे बनाना चाहिये। इसके बाद उसके घेरेमें एक ही नापके, एकहीसे छेदवाले और एकहीसे गुरुत्वके आरे लगाना चाहिये। ये सब आरे नदीके आवर्त्तके सदृश एक ही ओर कुछ-कुछ झुके हों। आरोंके आधे अंशमें पारा भरकर उनके छेदोंको बन्द कर देना चाहिये। ऐसा चक्र दो आधारोंपर स्थित करनेपर आप-ही-आप घूमेगा, क्योंकि यन्त्रके एक ओर पारा आरोंके मूलमें और दूसरी ओर आरोंके सिरेपर दौड़ेगा। शेषोक्त आरेके पारेके आकर्षणसे चक्र आप-ही-आप घूमेगा।

परन्तु यह है क्या व्यापार? क्या यह सदावह-यन्त्र है जिसकी निन्दा आधुनिक वैज्ञानियोंने जी खोलकर की है? या इसमें और भी कोई गुप्त बात है? स्वयंवह-यन्त्रका रहस्य कहीं खुल न जाय,इस आशङ्कासे सूर्य्य-सिद्धान्तमें उसे गुप्त रखनेके लिये शिष्यको बार-बार ताकीद की गई है। शिल्प-कौशल प्रकाशित हो जानेका जिन्हें इतना डर है वे अवश्य ही कोई बात खोलकर नहीं कह सकते। इसीलिये उन्होंने कहा है कि पारे,जल और तेल आदिका प्रयोग जानना मुश्किल काम है। भास्करके टीकाकार रङ्गनाथ जो सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं,कहते हैं—"स्वयंवह-यन्त्र एक असाधारण चीज है। मनुष्यके लिये उसका बनाना असाध्य है। इसीलिये वह दुर्लभ है। यदि ऐसा न होता तो वह प्रत्येक घरमें पाया जाता। समुद्र-पारवासी फिरङ्गियोंको स्वयंवह-

विद्यामें अच्छा अभ्यास है। वह कुहक-विद्याके अन्तर्गत है।"

अच्छा, यह कुहक-विद्या क्या चीज है? क्या कुहककी तरह स्वयंवह-विद्या भी गुप्त है? वर्णन करनेके ढङ्गसे तो जान पड़ता है कि स्वयंवह-यन्त्र योरपके सदावह-आवर्त-चक्रसे मिलता-जुलता है। उसमें यह माना गया है कि चक्र आवर्त्ताकार आरोंकी गोलियोंके भारसे घूमता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार चक्र घूमना असम्भव है।

भास्करने अन्य दो प्रकारके स्वयंवह-यन्त्रोंका भी वर्णन किया है। इन दोनोंका वर्णन ब्रह्मगुप्तके ग्रन्थमें नहीं है। एकका वर्णन सुनिये। भ्रम-यन्त्रके द्वारा चक्रके घेरेमें दो अंगुल गहरी और दो अंगुल चौड़ी एक नली बनाकर उसे दो आधारोंपर रक्खो। नलीके ऊपर ताड़के पत्ते मोमसे जोड़ दो। इसके बाद ताड़के पत्तोंमें छेद करके नलीमें पारा भर दो। फिर दूसरी जगह छेद करके नलीके एक ओर पानी भरो। तब छेद बन्द कर दो। बस जलसे आकृष्ट चक्र आप-ही-आप घूमेगा। पारा द्रव होनेपर भी भारी होता है। इसलिये जल उसे हटा न सकेगा।

क्या इसका यह मतलब है कि पारा नीचे ही रहेगा; जल पारेको ठेलेगा, इससे चक्र घूमेगा? यदि यही अर्थ ठीक हो, तो काल्पनिक सदावह-यन्त्रका यह एक अच्छा नमूना है।

इस काल्पनिक यन्त्रके साथ बीसवीं शताब्दीके इँगलेंडके एक सदावह-यन्त्रकी तुलना कीजिये। एक कुण्डमें पारा है और कुण्ड-की दाहिनी तरफ एक नलमें जल है। पारावाले कुण्डके ऊपर एक

चक्र है और भीतर भी एक चक्र है। एक सूत्र दोनों चक्रोंको वेष्टन किये हुए है। सूत्रमें छोटी छोटी गाँठें-सी हैं। वे पानीमें उतराकर ऊपर उठेंगी। इसके साथ ही दोनों चक्र भी घूमेंगे।

भास्कराचार्यके एक और भी स्वयवह-यन्त्रका वर्णन सुनिये-

एक चक्रके घेरेमें घटियाँ बँधी हुई हैं। इस चक्रको दो आधारोंपर रखिये। ताम्रादि धातुसे बने हुए अकुंशके आकारके एक नलसे कुण्डका जल घटियोंमें जायगा। तब भरी हुई घटियों-से आकृष्ट होकर चक्र घूमने लगेगा। चक्रसे गिरा हुआ जल यदि चक्रके नीचेकी नलीके द्वारा फिर कुण्डमें चला जाय तो कुण्डमें फिर जल भरने की आवश्यकता न रहेगी।

यहाँपर भास्कराचार्यने टेढ़े आकारके अंकुश यन्त्र या "कुक्कुट नाड़ी" का प्रयोग बतलाया है। छिन्न कमल या कमलिनीकी नालसे उन्होंने कुक्कुट-नाड़ीका दृष्टान्त भी दिया है। उन्होंने कहा है कि इस कुक्कुट-नाड़ीको शिल्पी लोग अच्छी तरह जानते हैं। "चक्रच्युतं तदुदकं कुण्डे याति प्रणालिकया"—कहकर उन्होंने नीचेका जल ऊपर जानेकी सम्भावना की है। योरपमें आजकल भी ऐसे यन्त्र पाये जाते हैं।

भास्कराचार्य स्वयंवह-यन्त्रको खिलौनेकी तरह समझते थे। इसीलिये लल्ल और ब्रह्मगुप्तके स्वयंवह यन्त्रोंको ग्राम्य कहकर उन्होंने उनकी निन्दा की है। क्योंकि वे सापेक्ष हैं अर्थात् जल न रहनेपर फिर उनमें जल डालना पड़ता है। जिस यन्त्रमें कोई चमत्कारकारिणी युक्ति हो वह भास्करकी रायमें ग्राम्य नहीं।

पूर्वोक्त बातोंसे मालूम हुआ कि प्राचीन कालके लोग स्वयं-वह-यन्त्र उसे कहते थे जिसे चलानेके लिये किसी मनुष्यकी आवश्यकता न पड़े और जो एक बार चलनेपर बराबर चलता रहे। अर्थात् स्वयंवहको वे सदावह भी बनाना चाहते थे। आधुनिक विज्ञानकी राय है कि कोई चीज सदा नहीं चल सकती। जिस यन्त्रमें जितनी शक्ति होती है उतनी ही बनी रहती है, घटती-बढ़ती नहीं। पूर्वकालके लोग (केवल इसी देशके नहीं किन्तु योरपके भी) समझते थे कि चक्र और दण्डके योगसे मनमाने काम लिये जा सकते हैं। प्रकृतिने अपने रहस्योंको गुप्त रक्खा है। हम नित्य देखते हैं कि नदी बहती है, हवा चलती है, वृक्षोंमें फल लगते हैं, आकाशमें मेघ आते हैं। किसी काममें विराम नहीं। आकर्षण, विकर्षण, सङ्कोचन, प्रसारण, संसक्ति और आसक्ति तथा समस्त आणविक क्रियाएं गुप्तबलका बाह्य विकाश हैं। कुछ भी हो, आधुनिक विज्ञान स्पष्ट कह रहा है कि चाहे जो शक्ति काम करे, उसका परिणाम विराम ही है; किसी समय वह जरूर ही बन्द हो जायगी। हमारी देह, जो अपना जीर्णोद्धार आप ही करती है, कैसे कौशलसे बनाई गई है, परन्तु उसके कामोंका भी विराम है। फिर मानवरचित यंत्रों-का विराम क्यों न होगा? आधुनिक विज्ञानके उन्नायक योरप और अमेरिकामें भी लोग सदावह-यन्त्रके आविष्कार-प्रलोभनमें अबतक फँसते जाते हैं।

वर्तमान विज्ञानसे प्राचीन विज्ञानकी तुलना करना ठीक

नहीं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि किसी-किसी पाश्चात्य पण्डित-ने सूर्य्यसिद्धांतमें स्वयंवहका नाम देखकर ही प्राचीन आर्यों की ज्ञान-गरिमाकी दिल्लगी उड़ाई है। परन्तु ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे आप समझ सकते हैं कि सब स्वयंवह-यन्त्र एक ही तत्वपर नहीं निर्मित हुए। प्राचीन आर्यों की प्रशंसा इस बात-की करनी चाहिये कि उन्होंने जल-चक्रका निर्माण करके उसके द्वारा गति सम्पादन की। विलायती क्लाक घड़ीको जिस तरह स्वयं वह नहीं कह सकते उसी तरह भास्करके स्वयंवह-यन्त्रोंको भी स्वयंवह नहीं मान सकते। गुरु-द्रव्यकी निम्न-गतिके द्वारा चक्र-भ्रमण कराना ही समस्त स्वयंवह-यन्त्रोंका मूल तत्व है। सत्रहवीं शताब्दीमें हाइगेन्स नामक एक विद्वान्ने दोलक (*Pendulum*) प्रयोग कर क्लाक घड़ीको सच्चा कालमानयन्त्र बनाया। यदि हम प्राचीन आर्यों को बिना दोलककी 'क्लाक' का आविष्कर्ता कहें तो अनुचित नहीं। कौन कह सकता है कि क्लाक-घड़ीका मूल-सूत्र इस देशसे विदेश नहीं गया ?*

बड़े अफसोसकी बात है कि डेढ़ हजार वर्ष पहले जिस ज्ञान और जिस प्रयोग-कुशलताकी इस देशमें इतनी प्रचुरता थी

---

*"*He (Waltherus) is also the first astronomer who used clocks moved by weights for the purpose of measuring time. These pieces of mechanism were introduced originally from eastern countries,*"

—*Grant's History of physical Astronomy*

उसका क्रमशः विकाश नहीं हुआ। वर्तमान कालमें तो उल्टा उसका लोप हो गया है। जल-प्रवाहमें जो शक्ति छिपी है उसे प्राचीन कालके लोग अच्छी तरह जानते थे। परन्तु हमलोग आधुनिक पाश्चात्य विज्ञानकी सहायता पाकर भी, प्रयोग-कुशल शिल्पी नहीं बन सके। हमारी सुजला भारत-भूमिकी खेती जब सूखने लगती है तब, हा अन्न, हा अन्न, कहकर हमलोग चिल्लाने लगते हैं, विपत्ति-निवारणका कुछ उपाय नहीं करते। हम जानते हैं कि वायु चलती है। परन्तु उसमें जो शक्ति सञ्चित है उससे कार्यसिद्धिका मार्ग हमें नहीं सूझ पड़ता। यदि सूर्य भगवान् हमारे समान अपात्रोंके देशमें इतना ताप वितरण न करते तो अच्छा होता; क्योंकि हमलोग ऐसे दानका भोग नहीं जानते। रामायण-में लिखा है कि इन्द्र, वरुण, पवन, अग्नि आदिको रावणने अपना दास बना रक्खा था; पर हम इस बातको जानकर भी अज्ञान बने बैठे हैं।

[अगस्त १९२५]

७

सौर जगत्की उत्पत्ति

यह विषय बहुत पुराना है, पर है बड़ा मनोरञ्जक। इसपर आजतक बहुत कुछ लिखा भी जा चुका है। अँगरेजी-भाषामें तो इसपर न मालूम कितने ग्रन्थ बड़े-बड़े विद्यमान हैं। फिर भी इस विषयमें नई-नई खोज होती ही जाती है और नये-नये सिद्धान्त अस्तित्वमें आते ही जाते हैं। हिन्दीमें इस विषयकी कोई सर्वमान्य पुस्तक अबतक नहीं प्रकाशित हुई। लेख अलबत्ते कई निकल चुके हैं। पर उनमें कुछ जटिलता है। कुछ समय हुआ, बँगलाभाषाके 'प्रवासी' नामक मासिक पत्रमें बाबू अपूर्व-चन्द्र दत्तका एक लेख बहुत अच्छा निकला था। उसमें जटि-लता कम है। अतएव इस लेखमें उसीका आशय दिया जाता है।

सृष्टिके आरम्भमें यह जगत् अनन्त आकाशमें, परमाणु-ओंके रूपमें विद्यमान था। अपरिमेय कालतक वह इसी रूपमें था। जब विधाताने इस सृष्टिकी रचना करनी चाही तब उसने इन परमाणुओंके समूहमें शक्तिका सञ्चार कर दिया। उस शक्तिके बलसे परमाणु-पिण्डमें गति उत्पन्न हो गई। पर यह शक्ति कैसी थी, इसकी व्याख्या करनेमें विज्ञान अबतक समर्थ नहीं हुआ। इसीके द्वारा गति उत्पन्न होती है। अतएव इस

शक्तिको हम गतिका "कारण" अवश्य कह सकते हैं। इस शक्तिके प्रभावसे परमाणुओंमें गतिका सञ्चार होनेपर वे परमाणु कुण्डलाकार होकर आकाशमें चक्कर काटने लगे। जैसे परमाणु जड़-जगत्‌की आदिम अवस्थाकी तसवीर या प्रतिकृति हैं, वैसे ही कुण्डलाकार गति भी जड़-पदार्थोंकी गतिकी शैशवावस्था है। जड़-जगत्‌में गतिका पहला काम केवल घूमने—केवल चक्कर लगाने—की चेष्टामात्र है, और कुछ नहीं। एक परमाणुके ऊपर दूसरा परमाणु रखकर, और दूसरेपर तीसरा रखकर ही, इस विशाल विश्वकी सृष्टि हुई है। यह ब्रह्माण्ड परमाणुओंहीके एकत्रीकरणका फल है। इस काममें कितने करोड़—कितने अरब-खरब वर्ष बीत चुके हैं, यह जान लेना कठिन ही नहीं, नितान्त असम्भव भी है। सृष्टिके आदि कारण परमाणुओंने अभीतक अपनी पुरानी कुण्डलाकार गतिका परित्याग नहीं किया। सृष्टि-रचनाके व्यापारमें—जगत्‌को प्रकट करनेके उद्योग-में—यह कुण्डलाकार गति ही विश्व-विधाताका पहला काम है। निरुद्यम और निश्चेष्ट जड़-जगत्‌में शक्तिका यही प्राथमिक आविर्भाव है।

कुण्डलाकार गतिमें यह नहीं भासित होता कि गतिको प्राप्त वस्तु एक जगहसे दूसरी जगह जा रही है। और एक प्रकारसे वह जाता भी नहीं। साँपकी पूँछ यदि उसके मुँहमें डाल दी जाय तो वह स्थानपरिवर्तन न कर सकेगा। वह केवल उसी जगह रहकर चक्कर लगाता फिरेगा। यही गति कुण्डलाकार कही

जाती है। पर इसके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इधर परमाणु भी स्वयं उद्यमहीन अतएव निश्चेष्ट हैं; उनमें स्वयमेव कुछ करनेकी शक्ति नहीं। सृष्टिकी इस अवस्थामें परमात्माने परमाणुओंको एक गुण देनेकी कृपा की। इस गुणको हम आसक्ति कह सकते हैं।

इस आसक्तिकी प्रेरणासे सारे जड़ कुण्डल घूमते-घूमते एक दूसरेकी तरफ खिंचने लगे। जड़वादी वैज्ञानिकोंका मत है कि यह आसक्ति और कुछ नहीं, कुण्डलाकार-गतिका फल या परिणाम मात्र है। इससे यह सूचित हुआ कि कुण्डलाकार गतिकी कार्य्य-कारिणी शक्ति एकमात्र आसक्तिपर अवलम्बित है। इस आसक्तिके द्वारा सारे जड़ कुण्डल घूमते-घूमते एक दूसरेकी तरफ आकृष्ट होने लगे। वे ज्यों-ज्यों समीप आते गये, त्यों-त्यों परस्पर संलग्न होते गये। इस तरह जब बहुतसे परमाणु संलग्न हो गये तब उनसे एक-एक अणुकी उत्पत्ति होने लगी। यहांपर एक विशेषता हुई। परमाणु तो सब एक ही जातिके थे। पर संलग्नता होनेपर जो अणुओंकी सृष्टि हुई उनमें भिन्नता आ गई। यह बात संलग्नताके न्यूनाधिक्यके कारण हुई। इसीसे जड़ कुण्डलोंकी स्थितिमें भिन्नता और उनके समावेशमें विचित्रता हो गई। अणुओंमें परमाणुओंकी भिन्न-भिन्न स्थितिके वैचित्र्यके कारण ही अणुओंकी जातियां भिन्न-भिन्न प्रकारकी होती हैं।

भिन्न-भिन्न परमाणुओंकी आसक्तिके समुदायके द्वारा ही अणुओंकी आसक्ति जानी जा सकती है। पर यह समुदाय या

समष्टि केवल परमाणुओंकी आसक्तिका योग-फल नहीं है। परमाणुओंकी स्थितिके भेदसे अणुओंकी आसक्तिके परिमाणमें न्यूनाधिकता होती है। इस कारण समान संख्यावाले परमाणुओंके द्वारा संघटित अणुओंकी भी आसक्ति एक-सी नहीं होती। जिस अणुकी आसक्ति जितनी ही अधिक होती है वह थोड़ी आसक्तिवाले अपने निकटवर्ती अणुको उतना ही अधिक अपनी तरफ खींच लेता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बहुतसे अणुओंका एकत्र समावेश होकर भिन्न भिन्न पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई है। निर्मल आकाशमें देखते ही देखते, भाफके परमाणु घने होकर जैसे मेघोंकी सृष्टि करते हैं, जड़-जगत्‌की आदिम उत्पत्तिका ढँग या क्रम भी वैसा ही है।

परन्तु पदार्थोंको उत्पन्न करने या बनानेमें जड़ परमाणु अपनी स्वतन्त्रताको नहीं खो देते; उनकी कुण्डलाकार गति हमेशा जैसीकी तैसी ही बनी रहती है। यही कारण है कि सब पदार्थोंमें जन्महीसे स्वभावतः एक प्रकारकी अखण्डनीय गतिकी आकांक्षा पाई जाती है।

अणुओंके परस्पर संलग्न होनेपर जगह-जगहपर उनका आकार बढ़कर क्रमशः बड़ेसे बहुत बड़ा होने लगा। इस प्रकार सारा जड़ जगत् अविच्छिन्न खण्ड-खण्ड नीहारिकाके रूपमें इधर-उधर फिरने लगा। इन नीहारिका-खण्डोंकी गतिका अन्त न था। दिन-पर-दिन अधिकाधिक अणुओंके समावेशसे उनकी गतिकी आकांक्षा और आसक्ति भी बहुत अधिक बढ़ने लगी।

इसका फल यह हुआ कि नीहारिका-खण्ड अधिकाधिक शक्ति-शाली होने लगे। बिना जड़का आधार पाये शक्ति प्रकट नहीं होती, इसीसे जड़को शक्तिका वाहन या आधार कहते हैं। इसके सिवा जहांपर जड़ पदार्थ जितना ही अधिक है वहांपर शक्तिके प्रकटीकरणका सुभीता भी उतना ही अधिक है। आकाश-में छोटे छोटे मेघखण्डोंके परस्पर सम्मेलनसे एक बड़ी भारी घटाकी उत्पत्ति होते देखा जाता है। वैसी ही घटना नीहारिका-खण्डोंमें भी हुई। नीहारिकाओंका आकार जितना ही अधिक बढ़ने लगा, गति और आसक्ति भी उनके अणुओंमें उतनी ही अधिक प्रबल होने लगी। धीरे-धीरे वे नीहारिका-खण्ड घनी-भूत होकर अन्तको एक विशाल पदार्थखण्डके रूपमें परिणत होगये और आकाशमें बड़े वेगसे चक्कर काटने लगे।

धीरे-धीरे परमाणुओंकी कुण्डलाकार गतिमें परिवर्तन हो गया। समग्र नीहारिका-निचयकी चाल चर्खीकी चालके सदृश प्रकट हुई। अणुओंमें जैसे-जैसे आसक्ति बढ़ती गई वैसे-ही-वैसे वे अधिकसे अधिक परस्पर पास आते गये। इसके अवश्यम्भावी फलके कारण नीहारिका-समूहका घेरा सङ्कुचित होने लगा। इस सिमटनेका परिणाम यह हुआ कि वह नीहारिका-चक्र घना होगया। फिर वह नीहारिका कुहासेकी अवस्थासे घनी भाफके रूपमें परिणत होगई। तदनन्तर उसने तरल, फिर कीचड़की तरह और अन्तमें कठिन पदार्थका आकार धारण किया। यही जड़-जगत्‌की उत्पत्ति या रचनाका क्रम है।

किसी तरल या लचीले पदार्थको आप घुमाइये। यदि आप घुमानेका वेग धीरे-धीरे बढ़ाते जायंगे तो देखेंगे कि उसका मध्य-भाग क्रमशः फूलता जाता है और अन्तको गोलक छोड़कर अलग होने—दूर जाने—की चेष्टा करता है। इसी नियमके अनुसार नीहारिका-खण्ड जितने ही अधिक घनीभूत होने लगे उतने ही वे अपनी गोलाकार गतिके कारण क्रमशः गोल होने लगे। इस समय भी जड़-जगत्‌में ऐसे नीहारिका-खण्ड देख पड़ते हैं जो अभीतक इतने घने नहीं हुए कि एक अखण्डित पदार्थके रूपमें घूम सकें।

जब नीहारिका-निचय एक अखण्डित पदार्थके रूपमें घूमने लगा तब उसमें एक केन्द्र अर्थात् स्थान-विशेष या विन्दु-विशेष-की उत्पत्ति हुई और उसके घने होनेका क्रम उसी केन्द्रकी तरफ प्रबल होने लगा। इसी कारण कैन्द्रिक अर्थात् केन्द्र-सम्बन्धी आकर्षणकी उत्पत्ति हुई। यही कैन्द्रिक आकर्षण इस समय माध्याकर्षणके नामसे प्रसिद्ध है। वास्तवमें यह माध्याकर्षण भिन्न-भिन्न अणुओंके आकर्षणकी समष्टिके सिवा और कुछ नहीं है। परमाणुओंकी आसक्तिका यही परिणाम है। इसीसे सारे अणु केन्द्रकी तरफ खिंचकर और उसे घेरकर उसके चारों तरफ चक्कर लगाते हैं। इस तरह चक्कर लगानेसे नीहा-रिकायें जितनी ही घनी होती हैं उतनी ही लचीले गोलेकी तरह बीचमें फूल उठती हैं। अन्तको जब उस फूले हुए अंशमें गतिका वेग इतना प्रबल हो जाता है कि वहांका जड़ अंश अपनी

जड़ताके कारण गतिके आगे चलनेकी चेष्टा करता है और उस चेष्टाके वेगसे केन्द्रिक आकर्षणकी मात्रा बिखर जाती है तब वह फूला हुआ अंश दूर छँटकर अलग हो जाता है। ऐसी अवस्थामें वह छँटा हुआ अंश, मूल नीहारिकाके केन्द्रसे दूर जाकर आप-ही-आप जड़ और घनीभूत होनेकी चेष्टा करता है। इस घने होनेकी अवस्थामें फिर वह गोलाकार रूप धारण करता है। वह अपने लिये एक अन्य स्वतन्त्र केन्द्रकी सृष्टि करता है और स्वयं ही एक स्वतन्त्र पदार्थ-खण्ड बन जाता है।

मूल-नीहारिका-खण्डसे ऊपर लिखे हुए ढङ्गसे, एक खण्ड अलग होकर एक स्वतंत्र गोलककी उत्पत्ति होना जड़ पदर्थोंके स्वाभाविक धर्म्मकी प्रक्रियामात्र है। परन्तु इस विच्युतिके कारण मूल गोलक और खण्ड-गोलकका पारस्परिक सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता। एक दूसरेकी तरफ उनकी आसक्ति,परस्परके केन्द्रकी दूरीके अनुसार कम होनेपर भी एकदम नष्ट नहीं होती। इस कारण खण्ड-गोलक अपने मूल गोलकको घेरकर घूमा करता है। ऐसी स्थितिमें मूल-गोलकको सूर्य्य और खण्ड-गोलकको ग्रह कहते हैं। सूर्य्यको घेरकर घूमते-घूमते ग्रह जितना ही अधिक घना हो जाता है, उसके केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगानेवाली उसकी गति उतनी ही प्रबल हो उठती है। इस गतिके क्रमशः बढ़नेके कारण वह ग्रह लचीले गोलेकी तरह बीचमें फूलने लगता है। इसी तरह ग्रहसे कुछ दिनोंमें छोटे-छोटे अन्य ग्रहों अर्थात् उपग्रहोंकी सृष्टि होती है।

ऊपर लिखे अनुसार क्रमशः बहुतसे ग्रहों और उपग्रहोंकी उत्पत्ति होनेपर यथासमय एक-एक सूर्यके चारों तरफ एक-एक बड़े परिवारकी सृष्टि हो जाती है। उस ग्रह-परिवारको सौर जगत् कहते हैं। इस प्रकार अनन्त समयमें सूर्य,ग्रह और उपग्रह क्रमशः घने हुए हैं; और घने होनेकी अवस्थामें क्रमशः गाढ़ी भाफ, तरल पदार्थ,कीचड़ आदिकी अवस्थाओंको पार करके कठिन और ठोस अवस्थाओंको पहुँचे हैं। जो गोलक जितना ही कठिन होता जाता है, उसके भीतर जो अणु हैं उनकी पारस्परिक रगड़से उसकी आणविक अर्थात् कुण्डलाकार गतिका ह्रास भी उतनाही होता जाता है। विज्ञान हमको बतलाता है कि गर्मी और प्रकाश इसी आणविक गतिके फल हैं। इस कारण उक्त पदार्थ-खण्ड जितने ही घने होते जाते हैं उतनीही गर्मी वे अपनी आणविक गतिकी रगड़से उत्पन्न करते हैं। जब वे कठिन अर्थात् ठोस पदार्थका रूप धीरे-धीरे धारण करते हैं तब गर्मी उत्पन्न करने और प्रकाश फैलानेकी उनकी शक्ति चली जाती है।

पृथ्वीपर रहनेवाले हमलोग जिस सूर्यके चारों तरफ चक्कर लगा रहे हैं उसके सदृश और भी कितने सूर्य इस ब्रह्माण्डमें हैं,यह कोई नहीं बता सकता। यह भी कोई निश्चयके साथ नहीं कह सकता कि सूर्य्य किसी अन्य महासूर्य्यका खण्ड है या नहीं। पहले जो कुछ कहा जा चुका है उससे यह प्रमाणित होता है कि जो सूर्य्य किसी मूल नीहारिका-खण्डके सङ्कोचसे उत्पन्न होता है उसके लिये उस जगहसे दूसरी जगह जाना सम्भव नहीं। परन्तु गणित

शास्त्रके आधारपर यह सिद्धान्त स्थिर हुआ है कि हमारा यह सूर्य्य शून्य आकाश-पथमें किसी-किसी निर्दिष्ट स्थानकी ओर जा रहा है। अतएव जान पड़ता है कि हमारा सूर्य्य किसी मूल नीहारिकाके सङ्कोचसे नहीं उत्पन्न हुआ; किन्तु किसी महा-सूर्य्यके सङ्कोच और चक्राकार गतिके कारण उससे च्युत हो-कर उत्पन्न हुआ है। सौर जगत्‌के सब ग्रह जैसे धीरे-धीरे जमते हुए कठिन अवस्थाको प्राप्त होते जाते हैं वैसे ही हमारा यह सूर्य्य भी जमते-जमते भविष्यत्‌में कठिन पदार्थ-खण्ड बन जायगा। उस समय उसका सारा तेज नष्ट हो जायगा। वह एक अन्धकारमय गर्तके सदृश रह जायगा। अनुमान तो ऐसा ही किया जाता है। पर यह घटना कब होगी, इसका पता कोई भी शास्त्र—कोई भी विज्ञान—बतानेमें असमर्थ है।

सौर जगत्‌में कई ग्रह एकदमही बुझकर अन्धकारमय हो गये हैं—जैसे बुध और शुक्र। कुछ ग्रहोंका आवरण-भाग प्रकाश-रहित हो जानेपर, उनका भीतरी भाग अब भी गर्म है—जैसे पृथ्वी और मङ्गलका। कोई-कोई ग्रह इस समय भी कुछ-ही-कुछ प्रकाश फैलानेकी शक्ति रखते हैं—जैसे बृहस्पति। इन ग्रहोंके रूप और घटन आदिकी आलोचनासे सौर जगत्‌की क्रमोत्पत्तिका नियम बहुत-कुछ जाना जा सकता है।

सूर्य्य अमर नहीं। उसका विनाश न होनेपर भी निर्वाण को प्राप्त होना सम्भव है। अतएव यह देखना चाहिये कि सूर्य्य-के एक बार बुझ जानेपर फिर भी उसके दीप्तिमान होनेकी—जल

उठनेकी—सम्भावना है या नहीं।

कई वर्ष हुए, आकाशके एक किनारे एकाएक एक अत्यन्त उज्ज्वल तारका प्रकट हो गई थी। बहुत समयतक दूरबीनके द्वारा उसकी देख-भाल करनेके बाद मालूम हुआ कि उसकी तेज रोशनी दिन-पर-दिन कम होती जाती है। क्रमशः वह रोशनी इतनी कम हो गई जितनी कि एक बहुत मामूली तारेकी होती है। पहले अवलोकनके आधारपर यह अनुमान किया जाता था कि कई एक तारकाएं मिलकर यह एक बड़ी तारका निर्म्मित हुई है। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे त्यों-त्यों देखा गया कि उसकी चमक धीरे-धीरे कम होती जाती है। अन्तको उसने एक साधारण और स्थिर नक्षत्रका रूप धारण कर लिया। कुछ समयसे इस तारकामें कोई विलक्षणता नहीं देखी जाती। किसी अग्नि-कुण्डमें लकड़ी या कोयला डालकर उसमें आग लगा देनेसे जैसे उस काष्ठ या कोयलेका समूह पहले तेजीसे जल उठता है और फिर धीरे-धीरे उसकी तेजी कम होती जाती है—वह स्थिर भावसे जलता रहता है—वही ढङ्ग इस नवीन तारकामें देखा जाता है।

कोई-कोई ज्योतिषी समझते हैं कि आकाशमें जिस जगहपर उक्त नवीन ताराका आविर्भाव हुआ है उस जगह किसी उल्का-समूहने फिरते फिरते एक उल्काशयकी सृष्टि की थी। कोई बुझा हुआ अपरिचित सूर्य्य अपनी कक्षामें चलते-चलते, उस उल्काशयमें जा गिरा। वहाँ कितनी ही उल्काओंकी रगड़से उसकी गति रुक गई और वह सहसा जल उठा। वायुके संघर्षसे उल्का-

ओंका जल उठना प्रायः देखा ही जाता है। अतएव किसी उल्का-समुदायकी रगड़से किसी अन्ध-सूर्य्यका जल उठना कुछ विचित्र या असम्भव बात नहीं। इसके सिवा उस सूर्य्यकी टक्करसे उल्काशयके अन्तर्गत उल्का-समूहका जल उठना भी कोई आश्चर्य-की बात नहीं। इसके साथ ही यह अनुमान भी स्वाभाविक है कि पृथ्वीके पास उल्काके आनेपर जैसे वह पृथ्वीकी ओर खिंच-कर पृथ्वीतलपर उल्कापातकी घटनाका कारण होती है वैसे ही उक्त अन्ध-सूर्य्य उल्काशयमें गिरकर उसकी उल्काराशिको अपनी तरफ खींचकर उससे टकराया है और उस टकरानेकी रगड़से उत्पन्न हुई गर्मीके कारण उस उल्कासमूहको उसने भस्म कर दिया है। उस नवीन ताराकी पहली तेज रोशनीका यही कारण हो सकता है। इस समय वही बुझा हुआ सूर्य्य सम्पूर्ण रीतिसे प्रज्वलित होकर एक नवीन अथवा पुनरुज्जीवित सूर्य्यके रूपमें प्रकाशित हुआ है। उसीको हम एक नवीन ताराके रूपमें देखते हैं।

यह अनुमान यदि सत्य हो तो इससे यह प्रमाणित होता है कि सूर्य्यके एक बार बुझकर निश्चेष्ट जड़-पिण्ड बन जानेहीसे उसके अस्तित्त्वका-अन्त नहीं होता। बुझा हुआ सूर्य्य जीवित होकर फिर प्रकट हो सकता है और उसके द्वारा नवीन सौर जगत्की सृष्टि होनेकी सम्भावना बनी रहती है। यह पुनरुज्ज्व-लित सूर्य्य एक-दम चाहे नीहारिका न हो जाय, पर भाफ या तारल्यभावको अवश्य धारण करेगा। तब इससे ग्रहों और उप-

ग्रहोंकी नई सृष्टि क्रमशः हो सकती है। इसी तरह इस जगत्‌का जीर्णोद्धार प्रायः हुआ करता है और यह जीर्णोद्धार विधाताकी मङ्गलमयी अनुकम्पाहीका परिचायक जान पड़ता है--इसमें कोई सन्देह नहीं।

[मार्च १९२७]

८

उत्तरी ध्रुवकी यात्रा

और

वहांकी स्कीमो जाति

उत्तरी ध्रुव तक पहुंचनेकी कोशिश बहुत समयसे हो रही है। पीरी, अमन्दसन और नानसन आदि कितने ही साहसी यात्री समय-समयपर उसका पता लगानेके लिये उस तरफ जा चुके हैं। पर अभीतक पूर्ण सफलता किसीको नहीं प्राप्त हुई। कुछ लोग बहुत दूर तक पहुँच गये हैं, कुछ थोड़ी ही दूरतक। उनके अनुभवोंसे पश्चाद्वर्ती यात्रियोंने विशेष लाभ उठाया है और आशा है कि अब कोई-न-कोई भाग्यवान् पुरुष ठेठ ध्रुव-प्रदेशमें मेख गाड़े और वहांपर अपने देशका झण्डा उड़ाये बिना न रहेगा। सतत उद्योग करनेसे सफलता अवश्य ही मिलती है। अभी हालमें भी एक साहब ध्रुवपर चढ़ाई करने गये थे। पर सुनते हैं बीचहीमें कहीं वे अटक रहे और बहुत दिन बाद वहांके बर्फसे छुटकारा पानेपर अब वे लौट रहे हैं।

ध्रुव-प्रदेशके इन यात्रियोंने अपनी-अपनी यात्राओंका वर्णन लिखकर प्रकाशित किया है और उस प्रदेशमें रहनेवाली स्कीमो नामक मनुष्य-जातिके विषयमें भी अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं।

क्योंकि इन लोगोंकी सहायताके बिना अन्यदेशवासी ध्रुव-प्रदेश-में अधिक दूरतक नहीं जा सकते। इन्हीं लोगोंके वर्णनोंके आधारपर नीचे हम उत्तरी ध्रुवकी यात्रा और वहांके निवासियोंके विषयमें कुछ बातें लिखते हैं—

पृथ्वीके उत्तरी छोरको उत्तरी ध्रुव कहते हैं। उसके आस-पास जमीन बिल्कुल नहीं, चारों तरफ समुद्र-ही-समुद्र है। पर उसमें प्राय: पानी नहीं। बहुत करके सर्वत्र जमी हुई बर्फकी राशियां-ही-राशियां हैं। यह बर्फ भी सब कहीं एकसी अर्थात् सम नहीं। कहीं वह सैकड़ों फुट ऊँची है और कहीं दो-ही-चार फुट। वहां खाद्य पदार्थका कहीं पता नहीं; कोई चीज उत्पन्न ही नहीं होती। जो लोग ध्रुव-प्रदेशकी यात्रा करने जाते हैं,वे खाने-पीनेका सारा सामान अपने साथ ले जाते हैं। यह सामान वे एक प्रकारकी गाड़ियोंपर ले जाते हैं। ये गाड़ियां बर्फपर फिसलती हुई चलती हैं। संसारके अन्य देशोंकी अपेक्षा ग्रीनलैंड नामका टापू उत्तरी ध्रुवके अधिक पास है। वहींके कुत्ते इन गाड़ियोंको खींचते या घसीटते हैं।

भूमि छोड़नेपर कोई चार-पांच सौ मील बर्फपर ही चलना पड़ता है। बीचमें यदि कहीं पानी मिल जाता है तो बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। जबतक पानी जमकर कठोर बर्फके रूपमें नहीं हो जाता, तबतक उसे पैदल पार करना असम्भव हो जाता है।

ध्रुव-प्रदेशमें सरदी इतनी अधिक पड़ती है कि थर्मामीटरका पारा शून्यके नीचे १० से ५५ अंश (डिग्री) तक उतर जाता है।

सरदीके कारण मिट्टीका तेलतक जम जाता है और शराब गाढ़ी हो जाती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यात्री लोग सामुद्रिक पानी मिलनेपर, उसके जम जानेकी प्रतीक्षा नहीं करते। वे अपना माल-असबाब वहीं कहीं छोड़ देते हैं और तैरकर पानीको पार करते हैं। कहीं बर्फकी तह बहुत पतली होती है। ऐसी जगह चलना बड़ा ही भयङ्कर है। यदि वह तह मनुष्यके बोझसे टूट जाय तो मनुष्य वहीं अथाह सागरमें समा जाय। फिर उसकी प्राण-रक्षा किसी भी तरह नहीं हो सकती।

जो लोग उत्तरी ध्रुवकी यात्राके लिये निकलते हैं वे जहाजपर ग्रीनलैंड पहुंचते हैं। वहांसे कुछ दूर आगेतक भी वे जहाजपर जा सकते हैं। राहमें उन्हें पानी-ही-पानी नहीं दिखाई देता। बर्फके बड़े-बड़े पहाड़ पानीपर तैरते हुए दिखाई देते हैं। कहीं-कहीं तो बर्फकी इतनी अधिकता हो जाती है कि बिना उसे तोड़े जहाज आगे बढ़ ही नहीं सकता। और फिर, जो कहीं सरदीके कारण समुद्रका पानी जम गया और जहाज वहीं फँस गया तो जहाजवालोंकी जान गई ही समझिये।

अद्भुत सहन-शक्ति रखनेवाले बलवान् मनुष्य ही ध्रुव-प्रदेशकी यात्रा कर सकते हैं। साधारण सरदीसे भी बीमार हो जानेवाले मनुष्य इस यात्राके योग्य नहीं। लोमश चमड़ेके मोटे-मोटे कपड़े ही वहां काम दे सकते हैं। उनके भी ऊपर पानीसे बचनेके लिये, एक ऐसा ओवरकोट (*Overcoat*) पहनना पड़ता है जिसके भीतर पानी न प्रवेश कर सके। फिर भी यदि शरीरका कोई

भाग खुला रह गया तो सरदी अपना काम किये बिना नहीं रहती और मनुष्यकी जानके लाले पड़ जाते हैं। यदि राहमें जूता फट जाय और दूसरा जूता पास न हो तो भी खैर नहीं। जब बर्फ का तूफ़ान जोरोंसे चलता है तब यात्रियोंकी नाकसे खून बहने लगता है। हवा बहुत ज्यादा ठण्डी होने और तेजीसे चलनेसे भी कभी-कभी मनुष्य मर जाता है। जब आदमीको सरदी लग जाती है तब उसे नींद बहुत आती है। उस समय यदि वह सो जाय तो उसके शरीरवर्ती रुधिरकी गति बन्द हो जाय और वह मर जाय।

प्रतिदिन यात्री कोई २० मीलकी यात्रा कर सकता है, अधिक नहीं। जहां ठहरना होता है वहां बर्फके झोपड़े बना लिये जाते हैं। उनके भीतर यात्री तेल और स्पिरिट (*Spirit*) की सहायता से आग जलाते और उसपर चाय तैयार करते हैं। वहां पानी तो मिलता ही नहीं। आगसे बर्फ गलाकर ही पानी बनाया जाता है। रहनेके लिये बनाया गया बर्फका झोपड़ा भी निरापद नहीं। उसे भी विपत्तिका घर ही समझना चाहिये। उसके नीचे यदि समुद्र हो और उसके ऊपरकी बर्फकी तह पतली हो, तो उसके फटनेका डर रहता है। यदि वह फट पड़े तो झोपड़ेके भीतर विश्राम करनेवाले यात्रियोंका फिर कहीं पता न मिले।

ध्रुव-प्रदेशमें हमारे यहांकी तरह दिन और रात नहीं होती। सालभरमें केवल एक ही दिन और एक ही रात होती है—अर्थात छः महीनेका दिन और छः महीनेकी रात। घड़ी देखकर ही वहां

समयका अन्दाजा लगाया जाता और दिन-रातका अनुमान किया जाता है। सूर्यके प्रकाशसे चारों ओर फैली हुई बर्फकी राशियां जगमगाया करती हैं। यदि यात्री हरे रंगके ऐनक लगाकर इस चमकसे अपने नेत्रोंकी रक्षा न करे तो वह अन्धा हो जाय।

उत्तरी ध्रुवके पास पहुंच जानेवालेको दिशाओंका ज्ञान नहीं होता। उसको उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम, सभी दिशाएं एक-सी जान पड़ती हैं। वह जिस ओर जायगा उसे वह दक्षिण ही कहेगा। बात यह है कि सूर्य आकाशके मध्यबिन्दुके पास गोलाकार घूमा करता है। इसी कारण उत्तरी ध्रुवके पास पहुंचने वाले यात्रीको सभी दिशाएं दक्षिण ही-सी जान पड़ती हैं।

उत्तरी ध्रुवमें जब दिन होता है तब सर्वत्र प्रकाश-ही-प्रकाश दिखाई पड़ता है, और जब रात होती है तब भयंकर अन्धकार-के अतिरिक्त और कुछ नहीं नजर आता।

इस प्रदेशमें मनुष्यका नाम नहीं और वृक्षों तथा वनस्पतियों का कहीं निशानतक नहीं। चारों ओर बर्फ और दिन हुआ तो प्रकाशके सिवा और कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतिशय शीत और बर्फके विकट तूफानोंका सदा राज्य रहता है। पर पाश्चात्य देशोंके उत्साही,साहसी और कष्ट-सहिष्णु अनुसन्धान-कर्ताओं के वर्षों के निरन्तर परिश्रमकी बदौलत यह प्रदेश अब पहलेकी तरह दुर्भेद्य और दुर्गम नहीं रह गया। अब तो कुछ समय से खोज करनेवालोंका एक-न-एक दल वहां जाया ही करता है।

उत्तरी ध्रुव-प्रदेशका समुद्र बहुत गहरा है। पाँच-पाँच, सात-

सात सौ गज नीचेतक भूमिका कहीं पता नहीं। यदि वहां समुद्र न होता, भूमि होती, तो वहाँकी यात्रा इतनी कठिन न होती। जब जाड़ा खूब पड़ने लगता है तब समुद्र जम जाता है। इसीसे जाड़ोंहीमें यात्रा करना सुभीतेका होता है। गरमियोंमें यात्रा करना जान खतरेमें डालना है। गरमीके दिनोंमें बर्फ गलकर पानी हो जाती है और जहाँ नहीं भी गलती वहाँ इतनी पतली पड़ जाती है कि थोड़ा भी बोझ या दबाव पड़नेपर टूट जाती है।

ध्रुव-प्रदेशमें २३ सितम्बरको सूर्य्य अस्त हो जाता है और २१ मार्चतक अस्त रहता है। इस समय एक-दो-महीने आगे-पीछे सायङ्कालके सदृश अस्तकाल और अरुणोदय रहता है। अर्थात् उसी तरहका धूमिल प्रकाश रहता है जिस तरहका कि अन्यत्र सायं-प्रातः देखा जाता है। हाँ, बीचके तीन महीनोंमें बिलकुल ही अन्धकार रहता है। तबतक उत्तरी ध्रुवमें जाड़ेका मौसिम समझा जाता है। लोग इसी जाड़ेके पिछले भागमें ध्रुव-यात्रा करते हैं। उन्हें सब काम अधिकतर अँधेरेहीमें करना पड़ता है। उस समय उनको घड़ीसे बड़ी सहायता मिलती है। जिस मनुष्यने अँधेरेमें दो-चार दिन भी बिताये हों वही सूर्य्यके प्रकाशका महत्त्व अच्छी तरह समझ सकता है। ध्रुवके आस-पास, स्वच्छ आकाशमें, तारोंका प्रकाश भी भयदायक मालूम होता है। हर महीने सिर्फ दस-बारह दिन निशानाथकके दर्शन होते हैं। इतने दिन वह अस्त नहीं होता, हाँ, घटता-बढ़ता जरूर रहता है। वहां चांदनी-में इधर-उधर घूमना भी खतरेसे खाली नहीं। कहीं बादल घिर

आये तो चन्द्रिका छिप जाती है और घूमनेवालोंको रास्ता भूल जानेका बड़ा डर रहता है। चन्द्रके आस-पास बहुधा परिधि-मण्डल और कहीं-कहीं इन्द्रधनुष भी देख पड़ते हैं। कभी-कभी एक नहीं अनेक—सात-सात, आठ-आठ—झूठे चन्द्रमा भी दिखाई दे जाते हैं। चन्द्रमाकी किरणें बर्फपर टेढ़ी होकर पड़नेसे ये अलीक चन्द्र दिखाई पड़ते हैं।

ग्रीनलेंडके उत्तरी किनारेकी सरदी और गरमीसे ही उत्तरी ध्रुवकी सरदी और गरमीका अन्दाजा किया जाता है। वहाँ कम-से-कम दिसम्बरमें शून्यके नीचे ९३ अंशतक सरदी और ज्यादासे ज्यादा जूनमें शून्यके ऊपर ५२ अंशतक गरमी पड़ती है। यह गरमी हमारे देशमें कड़ाकेके जाड़ोंके दिनोंकी-सी होती है। जाड़ोंमें यात्रियोंको विशेष कष्ट नहीं होता; परन्तु सरदीमें रहनेके कारण गरमियोंमें उन्हें जरा-सी भी गरमी बरदाश्त नहीं होती।

ध्रुव प्रदेशमें वर्षा नहीं होती। न कभी बादल गरजते हैं और न कभी बिजली ही चमकती है। बर्फके तूफान अलबत्ता खूब आया करते हैं।

इस प्रदेशमें कोई भी खाद्य-पदार्थ नहीं होता। जो लोग वहाँ जाते हैं वे चाय, जमा हुआ दूध, मांस, बिस्कुट और अन्य पदार्थ सब अपने साथ ले जाते हैं। शराब पीनेसे वहाँ बड़ी हानि पहुँचती है। वहाँ हर मनुष्यको प्रतिदिन कोई आध सेर मांस, आध सेर बिस्कुट, आध पाव जमा हुआ दूध और एक तोले चायकी दरकार होती है। कुत्तोंके लिये मांस और आग जलानेके लिये

तेलकी भी जरूरत होती है। भोजनका ठीक प्रबन्ध न होनेके कारण यात्रियोंको बहुधा बड़ी-बड़ी विपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। खाद्य पदार्थ चुक जानेसे कितने ही यात्रियोंको अपने प्राणों तकसे हाथ धोना पड़ता है। ऐसा भी हुआ है कि भूखके मारे लोग अपने कुत्तेतक मारकर खा गये हैं।

उत्तरी ध्रुवके पास ही ग्रीनलेंडमें स्कीमो नामकी एक मनुष्य जाति रहती है। यात्रामें इस जातिके मनुष्योंसे यात्रियोंको बहुत सहायता मिलती है। बात तो यह है कि इन लोगोंकी सहायता बिना सभ्य संसारका कोई मनुष्य इस प्रदेशकी यात्रा कर ही नहीं सकता। ये लोग उसी प्रदेशके रहनेवाले हैं और यहांकी भूमिके एक-एक टुकड़ेसे जानकारी रखते हैं। इन लोगोंकी रहन-सहन-का ढङ्ग बड़ा ही विचित्र है। सुनिये—

स्कीमो एक जगह टिककर कभी नहीं रहते। वे इधर-उधर घूमते ही फिरते हैं। आज यहां हैं तो कल वहां। माल-असबाब भी उनके पास बहुत नहीं होता। उनका रूप-रङ्ग मङ्गोल-जातिके आदमियोंसे कुछ-कुछ मिलता है। अन्तर इतना जरूर है कि वे रङ्गमें उतने गोरे नहीं होते। पुरातत्ववेत्ता लोगोंका खयाल है कि स्कीमो लोग यहां किसी समय साइबेरियासे आये होंगे। जाड़ोंमें वे लोग मिट्टी और पत्थरके घर बनाते और उन्हींमें रहते हैं। परन्तु शीत कम होते ही वे अपने घर छोड़ देते और सील-नामक मछलीके चमड़ेके बने हुए तम्बुओंमें रहने लगते हैं। ग्रीनलेंडमें कस्तूरी-वृष (*Musk Oxen*) नामका एक जानवर होता है। वे

उसका तथा वहांके सफेद रीछ, खरगोश, हिरन आदि जानवरों-का शिकार करते और उन्हींके मांससे अपना उदर-पोषण करते हैं। वे वालरस (*Wallrus*) और ह्वेल नामके समुद्री जीवोंका भी शिकार खेलते और उनका भी मांस खाते हैं। उस मांसको वे अपने कुत्तोंको भी खिलाते हैं।

स्कीमो-जातिके लोगोंका कोई धर्म नहीं। हां, भूत-प्रेतोंको वे जरूर मानते और उनसे डरते भी बहुत हैं। अपने बच्चों और बूढ़ोंकी वे खूब सेवा करते हैं। साफ रहना तो वे जानते ही नहीं। वे शायद ही कभी नहाते हों। जब शरीरपर बहुत मैल जम जाता है तब तेल मलकर उसे थोड़ा-थोड़ा करके उखाड़ डालते हैं। यात्री लोग वस्त्र, तम्बू, बर्तन आदि चीजोंका प्रलोभन देकर उनसे अपना काम निकालते हैं। उन्हें अन्य चीजोंकी जरूरत भी नहीं। उनकी भाषा विचित्र है। वह किसी भी अन्य भाषासे नहीं मिलती।

स्कीमो लोग अपने ही बनाये हुए घरपर अपना हक नहीं समझते। कोई भी जाकर उसमें रह सकता है। जमीन खोदकर उसके भीतर घर बनाये जाते हैं। घरके भीतर जमीनपर सूखी घास डाल दी जाती है। उसपर सील-मछलीका चमड़ा बिछा दिया जाता है। वही उनका बिछौना है। वे हिरनका चमड़ा पहनते हैं और चिरागमें तेलकी जगह चर्बी जलाते हैं। चिराग एक प्रकारके नरम पत्थरके बनते हैं। उस पत्थरकी चमक चिरागकी लौसे मिल कर इतनी गरमी पैदा कर देती है कि ऐसे चिरागसे भोजनतक पकाया जा सकता है। जिस घरमें एक भी चिराग जलता है उसमें

रहनेवालोंको बहुत कम सरदी लगती है।

गरमीके दिनोंमें स्कीमो लोग तम्बू तानकर मैदानोंमें रहते हैं। उस ऋतुमें घरोंकी छतें उखाड़ दी जाती हैं। इससे सूर्यका प्रकाश भीतर पड़ता है और नमी दूर हो जाती है।

स्कीमो जातिकी स्त्रियां पुरुषोंकी बहुत मदद करती हैं। वे एकको छोड़कर दूसरा पति कर सकती हैं। इस काममें उन्हें किसी तरहकी तलाक़की जरूरत नहीं होती। यदि एक स्त्रीके दो प्रेमी हुए तो उन दोनोंमें कुश्ती होती है। जो जीत जाता है वही उस स्त्रीका पति बनता है। पुरुष भी इस विषयमें स्वतन्त्र हैं। वे भी एकको छोड़कर दूसरी स्त्री कर सकते हैं। ऐसी अवस्थामें स्त्री या तो अपने माता-पिताके घर चली जाती है या अपने किसी प्रेमीके यहां। लड़कियोंका विवाह बारह-तेरह वर्षकी उम्रमें हो जाता है।

स्कीमो लोगोंको अपनी जिन्दगीकी स्थिरताका कुछ भी विश्वास नहीं। इसीसे शायद वे बहुत उद्दण्ड होते हैं। वे नम्रताका बर्ताव जानते ही नहीं। भूतोंसे वे बहुत डरते हैं। चलते-फिरते, खाते-पीते, सभी कामोंमें और सभी जगह उन्हें भूतोंका डर लगा रहता है। वे भूतोंको प्रसन्न करनेके लिये बलिदान देते हैं और उनको वशमें रखनेके लिये मन्त्र-यन्त्र, टोटके आदि भी करते हैं। जब एक घर छोड़कर दूसरेमें जाते हैं तब पहले घरके किवाड़ इसलिये तोड़ देते हैं कि भूत घरको उजड़ा समझकर उसमें प्रवेश न करे। पुराना हो जानेपर जब वे किसी वस्त्रको छोड़ते हैं तब उसकी चिन्धी-चिन्धी करके नष्ट करते हैं। उन्हें डर लगा रहता

है कि पहनने लायक समझकर कहीं उसके भी भीतर भूत न घुस जाय। भूतोंको शान्त रखनेके लिये वे पितरोंकी भी पूजा करते हैं। वालरसके गलेकी तांतसे वे एक बाजा और उसीकी हड्डीसे खँजड़ी बनाते हैं। खँजड़ीपर वालरसकाही चमड़ा मढ़ते हैं। फिर उनको बजाकर उन्मत्तकी तरह खूब नाचते-कूदते हैं।

स्कीमो-जातिके आदमी मुर्देको घरसे बहुत दूर ले जाकर गाड़ते हैं। उसके कपड़े-लत्ते भी उसीके साथ गाड़ देते हैं। यदि मृत मनुष्यका कोई कुत्ता हुआ तो मारकर वह भी उसीके साथ दफना दिया जाता है। जब कोई स्त्री मरती है तब उसकी आत्माको सुखी करनेके लिये उसका दीपक, सीने-पिरोनेका सामान, थोड़ीसी चर्बी और कभी-कभी उसके छोटे-छोटे बच्चोंतकको मारकर घरवाले उसीके साथ गाड़ देते हैं। मृत-व्यक्तिके लिये अधिक समय तक शोक नहीं किया जाता।

स्कीमो लोगोंके देशमें रातें बड़ी लम्बी होती हैं। पर वे तारोंको पहचानते हैं। उन्हींको देखकर वे समयका हिसाब लगाते हैं। सप्तर्षियोंके समुदायको वे लोग हिरनोंकी टोली और कृत्तिकाको कुत्तोंकी टोली कहते हैं। सूर्य्यको पुरुष और चन्द्रको वे स्त्री समझते हैं।

स्कीमो लोग सील मछलीके चमड़ेकी छोटी-छोटी डोंगियां बनाते हैं। उन्हीं डोंगियोंपर सवार होकर ह्वेल और वालरसका शिकार करते हैं। जमीनपर शिकार खेलनेमें वे कुत्तोंसे बड़ी मदद लेते हैं। उनके कुत्ते खूब मजबूत और चालाक होते हैं। वे थोड़ा

भी खाकर कई रोजतक अच्छी तरह काम कर सकते हैं। वे पानी नहीं पीते। उसके बदले बर्फ खाते हैं। बर्फ ही उनका पानी है। बर्फपर गाड़ियाँ घसीटनेमें उनसे बढ़कर और कोई जानवर काम नहीं दे सकता। इन्हीं कुत्तों और इनके स्वामी स्कीमो लोगोंकी सहायतासे अमेरिकाका कमांडर पीरी पहले-पहल उत्तरी ध्रुवके बहुत पासतक पहुँच सका था। यदि स्कीमो लोगों और उनके कुत्तोंने उसकी तथा उसके पूर्ववर्ती अन्य यात्रियोंकी, जिनमें-से बहुतोंको हिम-राशियोंने अपनी गोदमें सदाके लिये सुला लिया और जिनमेंसे कितने ही इन राशियोंके गुप्त रहस्यको प्रकट करने में भी बहुत कुछ समर्थ हुए,सहायता न की होती तो आज अमेरिकाके स्वातन्त्र्य और समताका सूचक झण्डा, अनन्त स्वतन्त्रताकी अधिष्ठात्री प्रकृति देवीके दुर्गम दुर्ग, उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के केन्द्रके बहुत पास न फहराता होता।

[दिसम्बर १९२२]

६

गौतम बुद्धका समय

सभ्यता सञ्चारके आरम्भ से लेकर आजतक, संसारमें जितने महापुरुष उत्पन्न हुए हैं, महात्मा गौतम बुद्धकी गिनती उन्हींमें है। इस समय सभ्य संसारमें मुख्य-मुख्य जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबपर बुद्ध भगवान्के उदात्त विचारोंका रङ्ग थोड़ा बहुत अवश्य चढ़ा हुआ है। सारे संसारकी मनुष्य संख्याका एक तृतीयांश बौद्ध-मतको मानता है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्य मतावलम्बियोंकी अपेक्षा बौद्ध लोगोंकी संख्या बहुत अधिक है। बुद्ध भगवान् अधिकांश एशिया-निवासियोंके मनोराज्यके अधीश्वर तो हैं ही, योरप और अमेरिकाकी विद्वन्मण्डलीपर भी उनका प्रभाव कुछ न-कुछ पड़ चुका है। यह प्रभाव दिन-पर-दिन बढ़ता ही जाता है। योरप और अमेरिकाकी मुख्य-मुख्य भाषाओंमें बुद्धदेव और बौद्ध-धर्मपर अबतक सैकड़ों ग्रंथ निकल चुके हैं। और अब भी निकलते ही चले जाते हैं। लेख कितने निकल चुके हैं, इसकी तो गणना ही नहीं की जा सकती। अबतक हमलोग इस सम्बन्धमें बिलकुल ही उदासीन-से थे। परन्तु कुछ समयसे हिन्दी-भाषा-भाषी जनसमुदाय भी इस ओर कुछ-कुछ आकृष्ट हुआ है। फल यह हुआ है कि बुद्धदेव और बौद्ध-धर्म्म-विषयक कुछ पुस्तकें

हिन्दीमें भी प्रकाशित हो गयी हैं। तथापि जिस महात्माकी महत्ता इतनी महीयसी है और जिसके उपदेशोंका प्रभाव सारे संसारमें इतनी अधिकतासे व्याप्त हो रहा है उसके आविर्भाव-काल—अर्थात् जन्म और निर्वाण—के विषयमें विद्वानोंमें बहुत मत-भेद है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ।

कुछ समय हुआ, मदरासके बी० गोपाल आइयर, बी० ए०, बी० एल० ने इंडियन ऐंटिक्वेरी नामक अँगरेजीके एक मासिक पत्रमें इस विषयपर एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा था। उसमें उन्होंने बुद्धके जन्म और निर्वाणका प्रामाणिक समय निश्चित करनेकी अच्छी चेष्टा की है। उन्हींके कथनका सारांश यहांपर दिया जाता है।

पाठक कहेंगे कि हम बहुधा दूसरोंहीके उच्छिष्टसे अपने लेखों-की कलेवर-पूर्ति किया करते हैं। उनका यह उलाहना किसी हदतक ठीक माना जा सकता है। परन्तु, निवेदन यह है कि हिन्दी-भाषाके साहित्यके जो उन्नायक हिन्दी-भाषाहीकी पुस्तकोंकी टीकाओं और भाष्योंको मौलिक ग्रन्थ मानकर टीकाकारोंको बड़े-बड़े इनाम तक दे डालते हैं वही यदि ऐसी बात कहें तो उनका यह उलाहना उन्हें तो शोभा दे नहीं सकता। हमारी राय तो यह है कि बात चाहे जिस देशवासी या जिस भाषा-भाषीकी कही हो, यदि वह अपनी भाषाके लिये नई है तो उसका उद्धरण और प्रकाशन सर्वथा उचित ही समझा जाने योग्य है। हमें तो इस विषयमें राजा भोजकी यह उक्ति बहुत ही ठीक जँचती है। हम तो

हृदयसे इसके कायल हैं। चम्पू-रामायणमें उन्होंने लिखा है—

वाल्मीकिगीतरघुपुङ्गवकीर्तिलेशै-
स्तृप्तिं करोमि कथमप्यधुना बुधानाम्
गङ्गाजलैर्भुवि भगीरथयत्नलब्धैः
किं तर्पणं न विदधाति जनः पितृणाम्।

अर्थात्—आदि कवि वाल्मीकि मुनिने रघुपुङ्गव रामचन्द्रकी कीर्तिका जो गान किया है उसी गानके कुछ थोड़ेसे लेश लेकर मैं सहृदय विद्वानोंकी तृप्ति करनेका उपक्रम कर रहा हूं। भगीरथने महान् प्रयत्न करके गङ्गाजीका अवतरण पृथ्वीपर कर दिया तो उसपर उनका इजारा थोड़े ही हो गया। क्या उसी गङ्गाके जलसे लोग पितरोंका तर्पण नहीं करते ?

अस्तु। अब बुद्ध भगवान्के आविर्भाव-कालके सम्बन्धकी बातें सुननेकी कृपा कीजिये।

उत्तरी देशोंके बौद्ध-ग्रन्थोंमें बुद्धका निर्वाणसमय ईसाके २४२से लेकर ५४६ वर्ष पूर्व तक बतलाया गया है। परन्तु आईने-अकबरीमें अबुलफज्लने लिखा है कि यह घटना सन् ईसवीके १२४६वर्ष पूर्व हुई थी। एक तामील ग्रन्थमें इस घटनाका समय कलि संवत् १६१६ दिया हुआ है। पर ब्रह्मदेश,स्याम और लङ्काके बौद्धोंका कथन है कि भगवान् बुद्धदेवका निर्वाण सन् ईसवी-के ५४३ वर्ष पहले हुआ था। और तो और, पश्चिमी विद्वान् भी इस विषयमें एकमत नहीं। वे लोग निर्वाणका समय ५४४ से २७० वर्ष ईसाके पहले बताते हैं। अध्यापक रीज डेविड्स

बौद्ध-साहित्यके प्रमुख ज्ञाता माने जाते हैं। उनका कथन है कि बुद्धका निर्वाण ४१२ वर्ष ईसवी पूर्वमें हुआ था। परन्तु अध्यापक कर्न इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि निर्वाणका निश्चित वर्ष सन् ईसवीके ३८८ वर्ष पूर्व है। अध्यापक मैक्समूलरका मत है कि बुद्धका निर्वाण सन् ईसवीके ४७७ वर्ष पूर्व हुआ था। डाक्टर फ्लीट यह घटना ४८२ वर्ष ई० पू० में और अध्यापक ओल्डनवर्ग तथा बार्थ साहब ४८० वर्ष ई० पू० में हुई बताते हैं। विन्सेंटस्मिथ साहबने तीन भिन्न-भिन्न स्थलोंमें तीन भिन्न-भिन्न कालोंका उल्लेख किया है। तीन अपने प्राचीन भारतवर्षके इतिहासमें उन्होंने लिखा है कि बुद्ध भगवान् ईसाके ४८७ वर्ष पहले निर्वाणको प्राप्त हुए। पर आपने "अशोक" नामक ग्रन्थमें लिखा है कि निर्वाण ५०८ ई० पू०में हुआ था। इसके बाद उन्होंने अपने एक अन्य लेखमें अपना पूर्वनिर्दिष्ट मत बदल दिया है। उसमें आपने लिखा है कि यह घटना ४८० से लेकर ४७० ई० पू० के बीच किसी समय हुई थी।

ऊपर लिखे गये भिन्न-भिन्न और परस्पर-विरुद्ध मतोंमें कौन मत सच्चा है इसका निर्णय करना बहुत कठिन है। इसलिये हम इस विषयकी सामग्रीकी छान-बीन करके, स्वतंत्र रीतिसे बुद्धदेवके निर्वाणका समय निश्चित करना चाहते हैं। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये हमें पहले मौर्य-संवत्का निश्चय करना आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि उसका सम्बन्ध इस विषयसे बहुत घनिष्ठ है। यह तभी हो सकता है जब हम यह जान लें कि मौर्य्य-वंशके प्रथम नरेश, महाराज चन्द्रगुप्त और उनके पौत्र अशोकवर्द्धन कब हुए थे। लङ्काके

बौद्ध-ग्रंथोंमें लिखा है कि महाराज अशोक-वर्द्धन मौर्य्य सिंहास-नासीन होनेके चौथे वर्ष,बौद्ध धर्ममें दीक्षित हुए थे। उसी साल उनका राजतिलक हुआ था। अपने शासनके अठारहवें वर्ष अशोक ने तीसरे बौद्ध संघका अधिवेशन किया था। उसके सभापति महात्मा तिष्य हुए थे। बुद्धदेवकी निर्वाण-प्राप्तिका वह २३५वां वर्ष था।

राज्यप्राप्तिके तेरहवें वर्षके एक शिलालेख या अभिलेखमें अशोक-ने लिखा है कि "अपने तिलकके नवें वर्ष मैंने कलिंगदेशके निवासियोंसे युद्ध किया। युद्धके कारण प्रजाकी अनन्त क्षति हुई। उसे देखकर मुझपर बड़ा असर पड़ा। इस कारण मैंने युद्धको सदाके लिये त्याग दिया है। अब मैं सेना-सञ्चालन करके विजय-प्राप्ति करनेका कभी इरादा न करूंगा। धर्मकी यह जीत मेरे जीवन की सबसे बड़ी जीत है। यह जीत केवल मेरे ही राज्यमें नहीं, किन्तु छः सौ योजनतक आस-पासके उन देशोंमें भी हुई है जहां अंटियोक,टरमई,अन्टीकीन,मग और अलकजंडर नामक राजे और दक्षिणके चोल,पाण्ड्य और सिंहलके राजे राज्य करते हैं"।

ऊपर जिन यवन-नरेशोंके नाम आये हैं वे कल्पित नाम नहीं। इन नामोंके नरेश उस समय भिन्न-भिन्न देशोंमें राज्य करते थे। उनमेंसे अंटियोक नाम यूरपके इतिहास-लेखकोंने अंटियोकस (*Antiochus*) लिखा है। वह सीरियाके सिंहासनपर २६१ ई० पू०में बैठा था; और २४७ ई० पू०में मरा था। टरमयी या टालमी (*Ptolemy*) २८५ से लेकर २४७ ई० पू० तक मिस्रका राजा था,अंटीकीन या अंटीगोनस(*Antigonus*)२७८से २४२ ई०पू०

तक मैसीडोनियाका अधिपति था। मग या मगस (*Magas*) सिरीन देशका स्वामी था। वह २५८ ई० पू०में मरा था। अलेकजांडर (*Alexander*) पेरिस देशका राजा था। उसका समय ई २७२ से लेकर २५८० पू० तक निश्चित है।

मालूम होता है कि अशोकने अपने राजा होनेके नवें और तेरहवें वर्षके बीच अपने धर्मप्रचारकोंको इन देशोंकोभे जा होगा। वे लोग २६१ और २५८ ई० पू०के बीच वहां पहुँचे होंगे; क्योंकि इसी समय पूर्वनिर्दिष्ट सभी नरेश जीवित थे। धर्म प्रचारक लोग सम्भवतः कलिङ्ग-युद्धके बाद ही मगधसे चल दिये होंगे और कोई एक सालमें ऊपर नाम दी हुई यूनानी रियासतोंमें पहुंचे होंगे। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि अशोकके राजतिलकका दसवां वर्ष २६० ई० पू०से मिलता-जुलता है। अथवा यों कहिये कि अशोकका तिलकोत्सव २६९ ई०पू०में मनाया गया था। बौद्ध ग्रन्थोंमें लिखा है कि गद्दीपर बैठनेके चौथे वर्ष अशोकका राजतिलक हुआ था। इसके बाद उन्होंने कोई ३७ वर्ष राज्य किया था। इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि अशोकने २७३से लेकर २३१ ई० पू० तक राज्य किया था।

अब चन्द्रगुप्तके समयका निश्चय करना चाहिये। लङ्काके बौद्ध ग्रन्थोंमें लिखा है कि चन्द्रगुप्तने २४ वर्ष और उसके पुत्र बिन्दुसारने(अशोकके पहले)२८ वर्षतक राज्य किया। यही बात वायुपुराण से भी सिद्ध होती है। इससे प्रकट है कि चन्द्रगुप्त ३२५ ई० पू०में गद्दीपर बैठा था। बस इसी समयसे मौर्य्य संवत् शुरू होता है।

यूनानी इतिहासकार भी इसी मतकी पुष्टि करते हैं। प्लूटार्कने सिकन्दरके जीवन-चरितमें लिखा है कि जब सिकन्दरने पञ्जाबको जीतकर आगे बढ़ना चाहा, तब उसने सुना कि युवक चन्द्रगुप्त एक बड़ी भारी सेना लेकर यूनानियोंपर आक्रमण करनेके लिये आ रहा है। इसलिये वह लौट पड़ा। यह घटना ३२६ ई० पू०की है। इसके कुछ ही दिनों बाद (३२५ ई०पू ०में) चन्द्रगुप्तने चाणक्यकी सहायतासे नन्दवंशका नाश करके मगधका राज्यसूत्र अपने हाथमें लिया। क्रिटस कर्टियस रूफस, डायोडरस, सिल्यूकस और जस्टिन आदि इतिहासकारों तथा मुद्राराक्षस-नाटकसे भी यही बात सिद्ध होती है।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणोंसे यह अच्छी तरह प्रकट है कि चन्द्रगुप्त मगधके सिंहासनपर ३२५ ई० पू०में हुआ था और अशोक का राजतिलक २६९ ई०पू०में हुआ था। लोग कहेंगे कि चन्द्रगुप्त के सिंहासनारोहण और अशोकके राजतिलकसे बुद्धके निर्वाण-कालका क्या सम्बन्ध? उत्तर यही है कि इनमें परस्पर बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। ये दोनों समय बुद्धके निर्वाणका समय निश्चित करनेके लिये बड़े महत्त्वके हैं। क्योंकि लङ्काके बौद्ध-ग्रंथोंमें लिखा है कि बुद्धके निर्वाणके ठीक १६२ और २८८ वर्ष बाद चन्द्रगुप्तको राज्यासनकी प्राप्ति और अशोकका राजतिलक हुआ था। इससे स्पष्ट है कि बुद्ध-भगवान्‌का निर्वाण ४८७ ई० पू०में हुआ था। बौद्ध-ग्रंथोंके पूर्वोक्त कथनको अध्यापक मैक्समूलरने भी माना है। इसके सिवा अशोकके अभिलेख भी इस मतकी पुष्टि करते हैं।

अशोकके अभिलेख पश्चिममें गुजरातसे लेकर पूर्वमें उड़ीसा तक और उत्तरमें अफगानिस्तानसे लेकर दक्षिणमें माइसोर तक पाये जाते हैं। इन लेखोंसे प्रकट है कि अशोकका राज्य सारे भारतवर्षमें फैला हुआ था। इनमेंसे सहसराम (बङ्गाल), रूपनाथ (मध्यप्रदेश), बैरठ (राजपूताना), सिद्धपुर, जातुंग, रामेश्वर और ब्रह्मगिरि (माइसोर) के अभिलेख अशोकका समय और बुद्धका निर्वाण-काल निश्चित करनेमें बड़ी सहायता देते हैं। इन सब शिलालेखोंमें जो बातें खुदी हुई हैं वे आपसमें एक दूसरीसे मिलती-जुलती हैं। कहीं-कहींपर केवल नाम-मात्रका भेद है। ब्रह्मगिरिके अभिलेखका आशय इस प्रकार है—

"सुवर्णगिरिके राजकुमार और शासनकर्त्ताको यह आदेश दिया जाता है—महाराज (अशोक) की आज्ञा है कि मैं कोई साढ़े बत्तीस वर्षतक साधारण शिष्य था। इतने दिनों तक मैंने कोई साधना नहीं की। परन्तु कुछ ऊपर ६ वर्षसे मैं कठिन साधना कर रहा हूँ। इस समय मुझे मालूम हो गया है कि भारतवासियोंको जो मैं सत्पथगामी समझता था वह ठीक नहीं। यह साधनाहीका फल है। केवल बड़ा आदमी होनेही से यह फल नहीं मिल सकता। छोटे आदमी भी साधनाके द्वारा स्वर्गीय आनन्दकी प्राप्ति कर सकते हैं। इसलिये यह आज्ञा दी जाती है कि छोटे-बड़े सभी आदमी साधना करके सुफलको प्राप्त करें। मेरे पड़ोसियोंको भी यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। परलोक-वासियोंने ऐसाही उपदेश दिया है। २५६।"

इस अभिलेखमें जो २५६ की संख्या है उसके अर्थके विषयमें विद्वानोंमें मतभेद है। सेनार्टसाहब कहते हैं कि २५६से तात्पर्य २५६ धर्म-प्रचारकोंसे है, जिन्हें अशोकने अन्य देशोंको भेजा था। परन्तु यह अर्थ निरा कल्पित, भ्रमात्मक, अप्रासङ्गिक और अयौक्तिक है। असलमें यह तारीख, सन् या साल है। इसका अर्थ यह है कि बुद्धके निर्वाणके २५६ वर्ष बीतनेपर यह अभिलेख खोदा गया था। बूलर, मैक्समूलर, कनिंहम, कर्न, पिशल फ्लीट, रीज डेविड्स और विन्सेंट स्मिथ आदि विद्वानोंने भी इसी अर्थ या तात्पर्यको ठीक माना है। इस अर्थकी पुष्टि एक और अभिलेखसे भी होती है। रूपनाथवाले शिलालेखमें लिखा है कि—"व्यूथेन सावने कते २५६ सत विवास ता" इसका भावार्थ यह है कि शिक्षकको संसारसे विदा हुए २५६ वर्ष बीते। यहाँपर शिक्षकसे तात्पर्य्य भगवान् गौतम बुद्धहीसे है।

पूर्वोक्त अभिलेख खोदनेकी आज्ञा अशोकने उस समय दी थी जिस समय वे मृत्युशय्यापर पड़े थे। परन्तु ये अभिलेख अशोकके मरनेके बाद खोदे गये थे। इसीलिये उनके अन्तमें लिखा है कि वे परलोकवासी (अशोक) के दिये हुए हैं। मालूम होता है कि मरनेके कुछ समय पहलेहीसे अशोक सुवर्णगिरिमें रहते थे। मृत्युके समय उन्होंने अपनी अन्तिम आज्ञाएं वहाँके राजकुमार और शासनकर्त्ताको सुना दी होंगी और उन्हें शिलाखण्डोंपर खुदवानेके लिये भी आदेश दिया होगा। इसी आदेशके अनुसार उन्होंने कार्य किया। यह बात खुद अभिलेखोंसे स्पष्ट मालूम होती है।

पूर्वनिर्दिष्ट अभिलेखमें लिखा है कि अशोक साढ़े बत्तीस वर्ष तक साधारण शिष्यके सदृश रहे। मूल लेखमें बत्तीसकी जगह "अढ़ितीसानि" शब्द है। कोई-कोई विद्वान् इसका अर्थ ढाई (२॥) करते हैं। परन्तु यह अर्थ नितान्त भ्रममूलक है; क्योंकि यह स्पष्ट है कि प्राकृतमें 'अढ़ि' का अर्थ ढाई और तीसानिका अर्थ तीस है। इस कारण 'अढ़ितीसानि' का अर्थ साढ़े बत्तीस है, ढाई (२॥) नहीं।

इस शिलालेखसे प्रकट है कि अशोक कुछ ऊपर अड़तीस (३२॥+६=३८॥) वर्ष तक बौद्ध रहकर बुद्धके निर्वाणके बाद २५६ वें वर्ष मृत्युको प्राप्त हुए। अथवा यों कहिये कि वे बुद्धके निर्वाणके २१८ वें (२५६-३८=२१८) वर्षमें बौद्ध हुए थे। लङ्काके बौद्धग्रन्थोंसे भी यही बात मालूम होती है। उनमें लिखा है कि अशोक बुद्धके निर्वाणके बाद २१८ वें वर्षमें बौद्ध हुए थे और उसके कोई सैंतीस-अड़तीस वर्ष बाद (२५६ निर्वाण-संवत्में) मरे थे। सुदर्शनविभाष नामक ग्रन्थसे भी इस मतकी पुष्टि होती है। इस ग्रन्थका अनुवाद चीनी भाषामें ४८९ ईसवीमें हुआ था। उसमें भी लिखा है कि अशोक २१८ निर्वाण-संवत्में बौद्ध हुए थे और २५६ निर्वाण-संवत्में मरे थे।

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि अशोककी मृत्यु २३१ ई० पू० में हुई थी। इसलिये यह सिद्ध है कि बुद्धका निर्वाण २३१+२५६=४८७ ईसवी पूर्वमें हुआ था। बौद्ध-ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि बुद्ध भगवान ८० वर्षतक जीवित रहे थे। इसीलिये उनका

जन्मसंवत् ५६७ ईसवी पूर्वमें माना जा सकता है।

पूर्वोक्त मतकी पुष्टि एक और प्रमाणसे भी होती है। कहते हैं कि चीनमें एक ग्रंथ है। प्राचीन कालमें वसन्तोत्सवके समय उसमें प्रतिवर्ष एक बिन्दु लगा दिया जाता था। इस बिन्दुको कैंटन नगरका प्रधान महन्त लगाता था। यह प्रथा ४८९ ई० तक प्रच-लित रही। उस साल संघभद्र नामके पुरोहितने अन्तिम बिन्दु लगाकर इस प्रथाको बन्द कर दिया। तबसे उसमें किसीने बिन्दु नहीं लगाया। इस बिन्दु-ग्रंथमें सब मिलाकर, बुद्धके निर्वाणसे लेकर ४८९ ईसवी तक ९७५ बिन्दु बने हैं। इससे मालूम होता है कि उस समय अर्थात् ४८९ ईसवी तक, बुद्धका निर्वाण हुए करीब ९७५ वर्ष बीत चुके थे। यह भी हमारे मतको पुष्ट करता है। अतएव इन सब प्रमाणोंसे सिद्ध है कि बुद्धका निर्वाण ४८७ ई० पू०में हुआ था और जन्म ५६७ ई० पू० में।

[नवम्बर १९२३]

१०

आगरेकी शाही इमारतें

मुसलमानोंके राज्यमें आगरा और देहलीकी बड़ी तरक्की हुई। यही दो शहर मुसलमानी राज्यके केन्द्र थे। यहीं बादशाह रहते थे; अतएव यहीं उनके अमीर-उमरा और सेनानायक सेना-समेत रहते थे। इसी कारण आगरा और देहलीमें उस समयकी अनेक इमारतें अबतक मौजूद हैं।

आगरेमें पुराने जमानेकी इतनी मसजिदें, बाग, मकान, महल और मकबरे इत्यादि हैं कि उन सबका वर्णन थोड़ेमें नहीं हो सकता। इससे हम इन प्रान्तोंकी "मान्यूमेण्टल ऐण्टिक्यूटीज" नामक पुस्तकसे पहले उन सबके सिर्फ नाम नीचे देते हैं। फिर हम उनमेंसे मुख्य-मुख्यका वर्णन करेंगे।

आगरेके सामने यमुना-पारकी इमारतें

१—(क) जहाँगीरके समयके ख्वाजह बुलन्दखां बुलन्द-बाग।
(ख) सातकुइयाँ।
(ग) बत्तीसखम्भा।
२—रामबाग अथवा आरामबाग
३—एतमादुद्दौलाका मकबरा।
४—सैयदका बाग।
५—बाबरकी शहजादी जोहराका जोहरा बाग।
६—चीनीका रौजा।
७—मोती-बाग।
८—नवलगञ्ज।

९—हुमायूँकी मसजिद । ११—आचानकबाग ।
१०—बाबरका चहार-बाग । १२—महताबबाग ।

किलेके भीरतकी इमारतें

१—किला ।
२—मोती मसजिद ।
३—मीना-बाजार ।
४—दीवाने आम ।
५—नगीना मसजिद
६—मच्छी-भवन ।
७—जहांगीरका बनवाया हुआ काले पत्थरका सिंहासन ।
८—दीवाने खास ।
९—समन-बुर्ज ।
१०—आरामगाह अथवा खासमहल ।
११—शीश महल ।
१२—अंगूरी बाग ।
१३—जहांगीरी महल ।
१४—सोमनाथका फाटक ।

आगरेके भीतर और पास-पड़ोसकी इमारतें

१—त्रिपोलिया ।
२—जामै मसजिद ।
३—रूमी-खांकी हवेली ।
४—शीश महल ।
५—ड्योढ़ी साहबजी ।
६—जलालुद्दीन बुखारीकी दरगाह ।
७—आलमखाँका बाग ।
८—फतेहपुरी मसजिद ।
९—सहेलियोंका गुम्बज ।
१०—ताजबीबीका रौजा ।
११—तिरियालका बागीचा ।
१२—लाल दीवार ।
१३—वजीरे आजमखान दौरानकी-हवेली ।
१४—अहमद बखीरीकी दरगाह ।
१५—दीवानजीका रौजा
१६—महाबतखाका बाग ।

१७—तख्ते पहलवान । २८-मुखन्निसोंकी मसजिद ।
१८—फिरोजखाँका रौजा । २९—राजा जसवन्तसिंहकी छतरी
१९—मखनीका गुम्बज ।
२०—जोधाबाईका महल । ३०—लाडिली बेगमका बाग ।
२१—ईदगाह । ३१—कन्धारी बाग ।
२२—अलीवर्दीखाँका हम्माम ३२—सादिकखाँकी कबर ।
२३-शाहविलायतकी दरगाह ३३—सलाबतखाँकी कबर ।
२४—अकबरी मसजिद । ३४—एतबारखाँकी कबर ।
२५—काली मसजिद । इसे कोई-कोई सिकन्दर-लोधीकी कबर बतलाते हैं ।
२६ - पुराना हम्माम
२७-मोतमिदखाँकी मसजिद । ३५—गुरूका ताल ।

सिकन्दरेकी इमारतें

१—सिकन्दर लोधीकी बारादरी ३—अकबरका मकबरा ।
२—हंस-महल ।

इस प्रकार आगरेमें और उसके आस-पास बाग, मसजिदें, मकबरे, महल और हम्माम इत्यादि मिलाकर ६४ इमारतें मुसलमानोंके समयकी हैं । इसपर भी हमने छोटी-छोटी कई इमारतोंके नाम छोड़ दिये हैं । जितने बाग हैं, प्रायः सबमें किसी-न-किसी तरहकी एक आध इमारत अवश्य है । जितनी इमारतें हैं, प्रायः सभी मुसलमानी जमानेके इतिहाससे थोड़ा बहुत सम्बन्ध रखती हैं । वे सब ऐतिहासिक हैं । क्याही अच्छा हो, यदि कोई उनका

सविस्तर वृत्तान्त हिन्दीमें लिखे और जिस इमारतसे जिस ऐतिहासिक व्यक्ति या घटनाका सम्बन्ध हो उसका भी साथ-साथ उल्लेख करता जाय। प्राचीन इतिहासकी स्मृतिके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है।

यमुना-पारकी इमारतें

राम-बाग या आराम-बागको कोई-कोई नूर-अफशांका बाग कहते हैं। नूर-अफशां एक बेगमका नाम था। किसी-किसीका मत है कि जहांगीरकी प्रियतमा बेगम नूरजहांहीका दूसरा नाम नूर अफशां था। इस बागके चारों तरफ दीवार है। पश्चिमकी तरफ-अर्थात् जिस तरफ यमुना बहती हैं,एक ऊँचा चबूतरा है। उसी पर पांच अठकोने मीनार हैं। चबूतरेपर दो बारादरियां हैं। मरनेपर बाबर बादशाहका मृत शरीर यहीं रक्खा गया था। यहांसे कुछ दिनों बाद वह काबुल भेजा गया। पर लोगोंका कथन है कि इस बागको नूरजहांने बनवाया था। वह यहां अपनी सहेलियोंके साथ सैर करने आया करती थी। इसीसे इसका नाम "आराम-बाग" हुआ।

एतमादुद्दौलाका मकबरा यमुनाके किनारे एक बागके भीतर है। बागका रकबा कोई १८० गज मुरब्बा है। नदीकी तरफ छोड़कर और सब तरफ बागके किनारे-किनारे दीवार है। नदीकी तरफ एक ऊंचा चबूतरा है। बागके चारों कोनोंपर एक-एक बुर्ज है। पूर्वकी तरफ बीचमें एक बहुत अच्छा फाटक है। उत्तर और दक्षिणकी तरफ बीचमें लाल पत्थरकी कई बहुत सुन्दर इमारतें

हैं। एतमादुद्दौलाकी कबर जिस चबूतरेपर है वह १५०फुट मुरब्बा है। चबूतरा लाल पत्थरका है, वह जमीनसे कोई ३फुट ऊंचा है। यह इमारत लगभग ७० फुट मुरब्बा है। बाहरसे इसमें संगमरमर जड़ा हुआ है। इसके हर कोनेपर सङ्गमरमरके अठकोने मीनार हैं। इसके बीचमें एक बड़ा मण्डप है। चारों तरफ हर कोनेमें एक-एक छोटा कमरा है। मण्डपमें सब तरफ मेहराब हैं। दक्षिणकी तरफवाली मेहराब खुली हैं। और सब संगमरमर की जालियोंसे बन्द हैं। दो मुख्य कबरोंके सिवा, किनारेके पांच कमरोंमें भी एक-एक कबर है। इस इमारतमें पत्थरका, और रंगका भी काम बहुत अच्छा है। परन्तु सङ्गमरमरके टुकड़ोंके निकाल लिये जानेसे इसकी सुन्दरतामें कुछ बाधा आ गयी है। कहीं-कहीं रङ्ग भी खराब हो गया है। इसके भीतर एक लेख १६१७ ईसवीका है। परन्तु जिस समय यह मकबरा बना था उस समयका यह लेख नहीं जान पड़ता।

किलेके भीतरकी इमारतें

आगरेका किला त्रिभुजाकार है। वह यमुनाके ठीक किनारे है। उसकी दीवारकी परिधि डेढ़ मीलके लगभग है। दीवारकी ऊँचाई ७० फुट है। दीवार लाल पत्थरकी है। उसके सब तरफ एक गहरा खन्दक है। उसके प्रधान फाटक अर्थात देहली दरवाजेके सामने खंदकपर एक पुल बना हुआ है। उसे इच्छानुसार लगा या हटा सकते हैं। देहली दरवाजेके दाहिनी तरफ एक जगहपर १६०५ ईसवीका एक लेख है। एक बार अकबरने

खानदेशपर चढ़ाई की थी। उस चढ़ाईका और उससे आगरेको लौट आनेका वर्णन इस लेखमें है। अकबरहीने १५६७ ईसवीमें इस किलेको बनवाया था। पर उसके पहले भी यहाँपर बादल-गढ़ नामक एक किला था। १५०२ ईसवीमें भूकम्पसे उसे बहुत हानि पहुँची थी। १५५३ ईसवीमें बारूदके उड़नेसे तो वह बिल-कुल ही बरबाद हो गया था। यदि अकबरने इस किलेको बिल-कुल ही गिराकर नये सिरेसे बनवाया तो उसे इसका बनवाने वाला कहना बहुत ठीक है। इस किलेके बनवानेमें ३५ लाख रुपये खर्च हुए थे और ८ वर्षतक इसका काम जारी रहा था।

मोती-मसजिद किलेके भीतर बहुत ऊँचेपर है। उसपर चढ़कर जानेके लिये दो तरफसे सीढ़ियाँ हैं। उसके बाहर लाल पत्थर लगा है। वह पूर्व-पश्चिम २५५ फुट और उत्तर-दक्षिण १९० फुट है। बाहरसे देखनेमें वह उदासीन मालूम होती है। परन्तु उसका भीतरी भाग बिलकुल सङ्गमरमरका है। इस कारण बाहरकी उदासीनता भीतरकी चमकसे ढक जाती है। मसजिदके सामनेका प्राङ्गण बहुत बड़ा है। मापमें वह १५५ फुट मुरब्बा है। खास मसजिदमें बड़े-बड़े खम्भोंकी तीन कतारें हैं। खम्भे बहुत अच्छे हैं। खम्भोंके ऊपर जो मिहराबें हैं वे देखने लायक हैं। इस मसजिदमें तीन गुम्बज हैं, उनमेंसे बीचवाला सबसे बड़ा है। इसमें संगमरमरकी जालीका काम बड़ा ही मनोहर है। मसजिद-के चारों कोनोंपर चार मीनार हैं। नमाज पढ़नेके दीवानखानेमें संगमरमर और संगमूसाके टुकड़े बड़ी खूबीसे जड़े हुए हैं।

८९१ आदमी एक साथ इसमें नमाज पढ़ सकते हैं। यह मसजिद अपने सादेपनके लिये प्रसिद्ध है। १६४८ से १६५५ ईसवी तक इसमें काम होता रहा था। तब यह बनकर तैयार हुई थी। इसके बनवानेमें तीन लाख रुपया खर्च हुआ था।

मोती-मसजिदके पास ही सर कार्लाविनकी समाधि है।

दीवानेआम एक खुली हुई इमारत है। वह लाल पत्थरकी है। चौकोर खम्भोंकी चार क़तारोंपर मिहराबें हैं। उन्हींपर उसकी छत ठहरी है। इसका दूसरा नाम महले चेहल सितून अर्थात् चालीस खम्भोंका महल है। इसीके पास बादशाहकी बैठक या कचहरी थी; जहांपर बैठकर वह साधारण रीतिपर राज्यके कागज-पत्र देखता था, न्याय करता था, और जिससे जो कुछ कहना होता था कहता था। दीवाने-आमहीमें अमीर-उमरा रोज आकर हाजिरी देते थे।

नगीना मसजिद एक छोटी-सी मसजिद है। परन्तु देखनेमें बड़ी सुन्दर है। वह बिलकुल सफ़ेद पत्थरकी है। शाही महलोंकी यह खास मसजिद थी। बेगमें भी इसमें आया करती थीं। इसमेंसे होकर एक परदेदार रास्ता दीवाने-आमकी छतपर गया है। छतपर जानेके लिये सीढ़ियां हैं। वहांसे वह रास्ता हरम अर्थात् अन्तःपुर तक गया है। इस मसजिदके तीन भाग हैं। इसकी छत छोटे-छोटे खम्भोंकी तीन कतारोंपर ठहरी है। खम्भे चौकोर और सादे हैं। छतपर तीन गुम्बज हैं।

मच्छी-भवन नामक १५० फुट × २०० फुटके प्राङ्गणमें जहां-

गीरका सिंहासन रक्खा है। वह काले पत्थरका है। वह १० फुट ७ इञ्च लम्बा और ९ फुट १० इंच चौड़ा है। इस सिंहासनके किनारे एक लेख है। वह १६०२ ईसवीका है। अर्थात वह अकबरकी मृत्युके तीन वर्ष पहलेका है। उसमें सुलतान सलीम अर्थात जहांगीरकी प्रशंसा है। इस काले सिंहासनके सामने ही थोड़ी दूरपर संगमरमरका एक सफेद सिंहासन भी है।

दीवाने-खासकी लम्बाई ६४ फुट और चौड़ाई ३४ फुट है। वह २२ फुट ऊँचा है। उसके सामने एक पेशगाहमें तीन मिहरावें हैं। उनके जवाबमें दूसरी तरफ भी, उतनी ही मिहरावें हैं। दोनों किनारोंमें दो-दो ताक-से हैं। उनपर भी मिहरावें हैं। दक्षिण-पूर्वकी तरफ शाही महलोंमें जानेका रास्ता है। उत्तर और दक्षिणकी तरफकी मिहरावोंके ऊपर जालीदार खिड़कियां हैं। इसमें एक लेख है, जिससे जाना जाता है कि यह इमारत १६३७ ईसवीमें बनायी गयी थी।

समन बुर्ज नामके दीवानखानेकी लम्बाई-चौड़ाई १७५×२३५ फुट है। इसके बनानेमें अपूर्व कारीगरी दिखायी गयी है। इसके प्राङ्गणमें रङ्गीन पत्थर जड़कर पचीसीके खेलका फर्श बनाया गया है। शाही बेगमोंके हम्माम और दूसरे मकानात इसके उत्तर हैं। यमुनाकी तरफ सङ्गमरमरकी जाली है। एक और जाली है जो अन्तपुर, अर्थात् शाही हरमको समन बुर्जसे अलग करती है। एक छोटासा कृत्रिम तालाब और फौवारा भी इसमें है।

खास महल या आरामगाह बड़ी ही मनोहर इमारत है।

उसका दीवानखाना ७०×४० फुट है। उसकी छत और दीवारोंमें चित्र-विचित्र बेल-बूटे बने हुए हैं। वे सब रङ्गीन हैं। उसमें छोटे-बड़े अनेक कमरे हैं। उनमें जो काम है बहुत अच्छा है। खास बादशाहके और शाहजहांकी प्यारी शाहज़ादी जहान-आरा बेगमके कमरे, औरोंकी अपेक्षा सुन्दरता और शोभामें बहुत बढ़े-चढ़े हैं। खास महलहीके पास शीश महल है। वह नीचेके खण्डमें है। वह शाही बेगमोंके नहानेकी जगह है। उसकी छत और दीवारोंमें आईने जड़े हुए हैं। उनमेंसे कुछ आईने निकल गये हैं। पर जितने हैं उतनेहीसे उसकी चमक-दमक और शोभाका बहुत-कुछ अन्दाज़ा हो सकता है। जिस समय इसमें रोशनी होती रही होगी उस समय यह स्थान तेजोमय हो जाता रहा होगा।

किलेके भीतर जहांगीरी महल भी देखने लायक है।

इस किलेमें एक बहुत बड़ा फाटक रक्खा है। उसे लोग सोमनाथका फाटक कहते हैं। १८४२ ईसवीमें वह गजनीसे आगरेको लाया गया था। लोगोंका खयाल है कि सोमनाथका फाटक नहीं है। सम्भव है कि गजनीमें सुलतान महमूदकी कबरका यह फाटक हो।

आगरेके भीतर और पड़ोसकी इमारतें

जामै मसजिद १६४४—१६४९ ईसवीमें तैयार हुई थी। उसे शाहजहांने बनवाया था। उसके बनवानेका काम शाहजहांने अपनी शाहज़ादी जहान आरा बेगमके सिपुर्द किया था। इसलिये

उसका असली नाम मसजिदे बेगम है। उसके बनवानेमें पाँच लाख रुपया खर्च हुआ था। यह मसजिद लाल पत्थरकी है। इसका फर्श जमीनसे ११ फुट ऊँचा है। यह बहुत बड़ी मसजिद है। इसका विस्तार १३० × १००फुट है। इसमें कई गुम्बज और कई मीनार हैं।

ताजबीबीके रौजेपर इतने लेख लिखे जा चुके हैं कि उसके विषयमें अब अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। यह रौजा भी यमुनाके किनारे किलेसे कोई डेढ़ मील है। आश्चर्य पैदा करनेवाली संसारकी जितनी इमारतें हैं ताजका रौजा भी उन्हींमेंसे है। इसे शाहजहाँने अपनी प्रियतमा बेगम मुमताजमहलके लिये बनवाया था। इस बेगमको अरजमन्द बानू बेगम या नवाब आलिया बेगम भी लोग कहते थे। ताजका चबूतरा जमीनसे १८ फुट ऊँचा है। उसपर संगमरमर बिछा हुआ है। चबूतरेका रकबा ३१३ फुट मुरब्बा है। उसके चारों किनारोंपर एक-एक मीनार १३३ फुट ऊँचा है। सुन्दरतामें इन मीनारोंकी बराबरी हिन्दुस्तानमें कोई मीनार नहीं कर सकता। इसके प्रधान मण्डपका घेरा ५८ फुट और ऊँचाई ८०फुट है। उसके बीचमें संगमरमरकी जालियोंसे घिरा हुआ एक स्थान है। उसीमें मुमताज महल और शाहजहांकी कबरें हैं। उसके नीचे एक अँधेरा स्थान है। असल कबरें वहीं हैं। ऊपरी कमरेमें जो कबरें हैं वे उनकी नकल हैं। इसमें संगमरमर और संगमूसा इत्यादि उत्तम-उत्तम पत्थरोंके सिवा और कुछ नहीं लगा। इन्हीं पत्थरोंमें रङ्ग-रङ्गके बहुमूल्य नग जड़े हुए हैं। उन्हींको पच्ची

करके अनेक तरहके बेल बूटे बनाये गये हैं। रौजेके चारों तरफ तुगरा हुरूफोंमें कुरानके वाक्य, काले पत्थरोंकी पच्चीकारीके काम में नकूश हैं। इसकी बराबर सुन्दर इमारत हिन्दुस्तानमें दूसरी नहीं। दूर-दूरसे लोग इसे देखने आते हैं। मुमताजमहल बेगमकी मृत्यु दक्षिणमें हुई थी। जब रौजा बन गया तब उसकी हड्डियां लाकर रौजेके भीतर कबरमें रक्खी गई थी। रौजेके बाईं तरफ तीन गुम्बजकी एक मसजिद है। दाहिनी तरफ उसके जवाबमें एक और मसजिद है। रौजेके सामने एक हौज है। उसमें फौवारोंकी एक पांति है। हौजके पानीमें रङ्ग-बिरङ्गी मछलियां हमेशा खेला करती हैं। यह रौजा एक बागके भीतर है। उसमें चन्दन, इला-यची, सुपारी और मोलसिरी आदिके अनेक पेड़ हैं। फूल भी उसमें नाना प्रकारके होते हैं। वे सब ऋतुओंमें खिला करते हैं। इस रौजेमें कई लेख हैं। मुमताज-महलकी कबरपर जो लेख है वह १६३१ ईसवीका है और शाहजहांकी कबरपर जो है वह १६६७ का है। बाहर जो लेख हैं उनमेंसे एक १६३७ ईसवीका है, दूसरा १६३९ का; और तीसरा १६४८ का। इससे जान पड़ता है कि जैसे-जैसे इसके भाग तैयार हुए हैं वैसे-ही-वैसे उनपर लेख लिखे गये हैं। २२ वर्षतक इसमें काम जारी रहा था; और सवा तीन करोड़ रुपये इसके बनानेमें खर्च हुए थे।

छीपी-टोला महल्लेमें अलीवर्दीखांका हम्माम; दरबार शाहजी महल्लेमें शाह वलायतकी दरगाह; चौकमें अकबरी मसजिद; हीरा-मनके बागमें काली मसजिद; और लोहेकी मण्डीमें मुखम्मिसों

(क़ौमों) की मसजिद भी पुरानी ऐतिहासिक इमारतें हैं।

जोधपुरके राजा जसवन्तसिंहकी छतरी भी आगरेमें एक मशहूर जगह है। वह एक बागके बीचमें है। छत्रा अभी खूब अच्छी हालतमें है। उसमें लाल पत्थर लगा हुआ है। इसका काम तारीफके काबिल है। जसवन्तसिंह दाराशिकोहके पक्षपाती थे। १६७७ ईसवीके लगभग काबुलमें उनकी मृत्यु हुई थी। उस समय औरङ्गजेब बादशाह था। अतएव सम्भव नहीं कि राजा जसवन्तसिंहका अग्निसंस्कार आगरेमें हुआ हो। शायद उनकी यादगारमें यह छत्री पीछेसे बनवायी गयी हो।

सिकन्दरकी इमारतें

आगरेसे सिकन्दरा ५ मील है। लोगोंका अनुमान है कि लोधी घरानेके बादशाहोंके समयका आगरा यहीं था। आगरे और सिकन्दरेके बीचमें अनेक पुरानी इमारतोंके खँडहर अबतक पाये जाते हैं। सिकन्दरेमें सिकन्दर लोधीकी बारादरी मशहूर है। वह १४९५ ईसवीमें बनी थी। इस इमारतको लोग अकबर-की ईसाई बेगम मरिअमुज्जमानीके रौजेके नामसे अधिक जानते हैं। अकबरने एक क्रिश्चियन मेमसे विवाह किया था। उसीकी कबर यहांपर है।

सिकन्दरेकी इमारतोंमें सबसे अधिक दर्शनीय इमारत अक-बरकी कबर है। उसके चारों तरफ बाग़ है। बाग़में चार फाटक हैं, मक़बरेकी इमारत पांच खण्डोंकी है। नीचेके खण्डोंकी अपेक्षा ऊपरके खण्ड छोटे होते गये हैं। सबसे ऊपरका खण्ड बिलकुल

सङ्गमरमरका है। अकबरकी कब्र नीचे है। उसका जवाब जो ऊपर है उसके सिरहाने और पैताने अल्लाहो अकबर और जल्ल-अजलालहू खुदा हुआ है। इधर-उधर परमेश्वरके ९९ नाम अरबी-के बड़े ही सुन्दर अक्षरोंमें नक्श किये हुए हैं। परन्तु वहां जितने लेख हैं उनमें महम्मद साहबका नाम कहीं नहीं है। इसमें पत्थरका काम पहले बहुत अच्छा था। परन्तु डीगके जाट राजा जवाहरसिंहने इसके बहुतसे कीमती पत्थर उखाड़कर इसकी शोभा कम कर दी। इसी मकबरेमें अकबरकी दो बेटियां और दो पोतियां भी दफन की गई हैं। शाहे आलमके बेटे सुलेमांशि-कोहकी भी कबर यहीं है। उसकी दो बेगमें भी उसीके पास दफन हैं। यह मकबरा जहांगीरके समयमें १६१२ ईसवीमें बनकर तैयार हुआ था।

[मार्च १९२३]

११

चित्रों द्वारा शिक्षा

अभी कलतक हमलोग इस लायक भी न समझे जाते थे कि अपने देशके राज्य-प्रबन्धका थोड़ासा भी अंश हमारे सिपुर्द किया जा सके। सरकार कहती थी कि अभी तुम निरे बच्चे हो, राज-काज चलानेकी योग्यता तुममें नहीं। जब होगी तब तुम्हें वह काम दे दिया जायगा। अभी तो तुम हमींको अपना माँ-बाप समझो। हमी तुम्हारी रक्षा करेंगे-तुम्हें सिखावें-पढ़ावेंगे और तुम्हें बला-ओंसे बचावेंगे। पर समयने पलटा खाया और सरकार हमें अपना राज्य सँभालनेके कुछ-कुछ योग्य ही नहीं समझने लगी, किन्तु उसने राज्य-प्रबन्ध सम्बन्धी बहुत कुछ काम भी हमें दे डाला।

कुछ समय पूर्व इधर तो सरकार हमारी अयोग्यताकी घोषणा कर रही थी, उधर इस देशकी कई रियासतें अपने राज्य-प्रबन्ध-की खूबियोंसे हमारी अँगरेज-सरकारको कई विषयोंमें मातकर रही थीं। मानों वे कह रही थीं कि भारतवासियोंपर अयोग्यता-का कलङ्क लगाना नितान्त निराधार है। मौका दिये जानेपर वे सरकारसे भी अच्छा राज्य-प्रबन्ध कर सकते हैं। शिक्षा दानही-को लीजिये। देखिये, हमने इसका जैसा अच्छा प्रबन्ध किया है, वैसा अच्छा प्रबन्ध आजतक आपसे किसी एक भी प्रांतमें करते

नहीं बना। माइसोर, ट्रावनकोर और बड़ौदाकी रियासत ऐसी ही रियासतोंमें हैं।

शिक्षाके सम्बन्धमें बड़ौदेकी रियासतें कई बातोंमें हमारी सरकारसे आगे बढ़ी हुई हैं। इसका एक उदाहरण सुनिये—

बड़ौदेमें एक बहुत बड़ा पुस्तकालय राज्यकी ओरसे संस्थापित है। उसकी स्थापना हुए बहुत समय हुआ। उसके नियम निर्दिष्ट करने और उसे सुव्यवस्थित रीतिपर चलानेके लिये महाराजा बड़ौदाने एक अनुभवी कर्मचारी अमेरिकासे बुलाया था। उसकी अधीनतामें रहकर अब तो कई भारतवासी भी उस कामको सीख गये हैं। वे अब पुस्तकालयको बड़ी योग्यतासे चला रहे हैं। उसका एक महकमा ही अलग कर दिया गया है। उसने बड़ौदा-राज्यके बड़े-बड़े गावोंतकमें पुस्तकालय खोल दिये हैं और जहां पुस्तकालय नहीं खोले जा सकते वहां सफरी पुस्तकालयोंसे लाभ उठानेका प्रबन्ध कर दिया है। इससे छोटे-छोटे गावोंके निवासियोंके लिये भी ज्ञानार्जनका मार्ग सुलभ हो गया है। पुस्तकालयोंकी बदौलत पुस्तकावलोकनसे कितनी ज्ञानवृद्धि हो सकती है; उसे बतानेकी जरूरत नहीं। खेद है इस तरहका प्रबन्ध अंगरेजी शासनके अधीन रहनेवाले भारतवासियोंके लिये सुलभ नहीं।

बड़ौदेके इस पुस्तकालय-विभागने कुछ समयसे देहातियोंके लाभके लिये एक और भी काम आरम्भ कर दिया है। इस कामसे छोटे-छोटे गावोंके अपढ़ नर, नारी और बच्चेतक अपना मनोरञ्जन कर सकते हैं और साथ ही जानने योग्य अनेक नई-नई

बातें जान सकते हैं। यह काम है—चित्रों द्वारा शिक्षा देना। इस विषयपर डी० एस० सवरकर नामके एक महाशयने एक छोटीसी पुस्तिका लिखी है। उसे भारतीय गवर्नमेन्टहीके "ब्यूरो आफ एजुकेशन" ने छापकर प्रकाशित किया है। इस पुस्तकमें थोड़ेमें यह बताया गया है कि बड़ौदा-राज्य किस प्रकार अपनी प्रजाको चित्रों द्वारा शिक्षा देता है—

शिक्षाका यह क्रम खासकर स्कूलके छात्रोंके लिये नहीं। हां, किसी गांवमें यदि यह शिक्षा दी जा रही हो तो स्कूलके छात्र भी वहां जाकर उससे लाभ उठा सकते हैं। स्कूलोंके लिये तो इस प्रकारकी शिक्षाका प्रबन्ध अलग ही है। शिक्षा-विभागके अधिकारियोंने प्रत्येक देहाती-स्कूलको कार्डों पर छपे हुए तथा और प्रकारके भी सैकड़ों चित्र दिये हैं। उन्होंने स्टीरियस्कोप नामके यन्त्र भी दिये हैं। इन यन्त्रोंकी सहायतासे देखनेपर छोटे भी चित्र बहुत बड़े देख पड़ते हैं और उनका प्रत्येक दृश्य खूब अच्छी तरह ध्यानमें आ जाता है। अध्यापक चित्र दिखा-दिखाकर उनके सम्बन्धकी सारी बातें छात्रोंको विस्तारपूर्वक समझाते और उनकी ज्ञानवृद्धि करते हैं। अँगरेजी सरकारके द्वारा शासित किसी भी प्रदेशके स्कूलोंमें इस तरहका कुछ प्रबन्ध नहीं।

बड़ौदा-राज्यमें देहातियोंकी शिक्षाके लिये जो चित्र-प्रदर्शिनी शाखा खुली है उसका सीधा सम्बन्ध बड़ौदेके राजकीय पुस्तकालयसे है। इस शाखाको खुले कोई ८ वर्ष हुए। यह शाखा कार्ड चित्र, स्टीरियोग्राफ, मैजिक लैनटर्न स्लाइड और सीनामेटोग्राफ

फिल्म—इन चार प्रकारके चित्रोंके द्वारा देहातियोंको शिक्षा देती है। उसके पास दो सीनिमा मैशीनें, तीन बिजलीकी मैशीनें, दो मैजिक लैनटर्न और एक रेडियोपटिकन नामकी मैशीन—इतनी कलें हैं। इनके सिवा ५० स्टीरियस्कोप और उनकी सहायतासे दिखानेके लिये कोई ५ हजार चित्र हैं। आठ-सौके लगभग मैजिक लैनटर्नके स्लाइड और कोई एक-सौके लगभग सीनामैटोग्राफ फिल्म हैं। इन्हीं चित्रों और मैशीनों आदिके द्वारा बारी-बारीसे सारे राज्यके देहातियोंका मनोरञ्जन और ज्ञानवर्धन किया जाता है। सुनते हैं, १९१८-१९१९ इसवीमें डेढ़ लाखसे भी अधिक लोगोंने इस शिक्षासे लाभ उठाया।

इस कामके लिये दो इन्स्पेक्टर नियत हैं। वे राजकीय पुस्तकालयके अधिकारियोंकी मातहतीमें काम करते हैं। एकको तनख्वाह ३० से ५० रुपये तक और दूसरेको ६० से १०० रुपये तक है। ये लोग चित्रों द्वारा शिक्षा देनेका भी काम करते हैं और देहाती पुस्तकालयोंका निरीक्षण भी करते हैं। देहातमें गांव-गांव भेजी जानेवाली पुस्तकों (ट्रैवलिंग लाइब्रेरीज़) की देख-भाल भी ये लोग करते हैं। इनके पास जो चित्र रहते हैं उनके दृश्योंके वर्णन आदि इनके पास पुस्तकाकार रहते हैं। ये वर्णन सब गुजराती भाषामें हैं, क्योंकि यही भाषा राज्यके अधिकांश निवासियोंकी मातृभाषा है। जब ये लोग किसी गांवमें पहुँचते हैं तब पास-पड़ोसके गांवोंको भी खबर भेज दी जाती है। और तमाशेके रूपमें शिक्षादान या लेक्चरका समय बता दिया जाता है।

बस, समयपर झुण्डके झुण्ड लोग बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां एक हो जाते हैं तब लेक्चर आरम्भ होता है और कोई एक घंटे तक होता रहता है। बड़े-बड़े गांवों और कसबोंमें खास तौरपर लेक्चरका प्रबन्ध किया जाता है। लेक्चर देनेवाला निर्दिष्ट विषयके चित्र दिखाता जाता है और उनका मर्म अपने पासकी पुस्तक देख-देखकर समझाता जाता है। जैसे यदि अमेरिकाकी खेतीके संबंधके चित्र दिखाये जाते हैं तो भी खेती करनेके ढंग और फसल काटने, माँड़ने, उड़ाने इत्यादिके यन्त्रोंके चित्र दिखाते समय लेक्चर देनेवाला उनके उपयोग आदि भी समझाता जाता है। इस समय इस शाखाके पास जो चित्र हैं उनका अधिक संबन्ध योरप और अमेरिकासे ही है। उनमें उन्हीं महादेशोंके दृश्य दिखाये गये हैं। यह बात हम लोगोंके लिये भी लाभदायक है, पर बहुत अधिक नहीं। ऐसे ही चित्रोंकी अधिकता होनी चाहिये जिनका सम्बन्ध अपने देशसे हो। अमेरिकाके बाजारोंके दृश्य और ब्रिटानीके गुलाबके बागके दृश्य देखकर देखनेवालोंको उतना लाभ नहीं हो सकता जितना कि ताजमहल, अजंताकी गुफाओं, साँची और सारनाथके स्तूपों और काशीके घाटोंके दृश्य देखकर हो सकता है। इस त्रुटिको पुस्तकालयके अधिकारी भी समझते हैं और शायद वे इसे दूर करनेकी फिक्र भी कर रहे हैं।

जो दो सीनिमा-मैशीनें चित्र-शिक्षाके काम आती हैं उनमेंसे "पाथे" की मैशीन दूसरी मैशीनसे अच्छी है। उसका पूरा नाम अँगरेजीमें है—"पाथेज सेल्फ कन्टेन्ड सिनेमा ग्रूप।" उसकी

कीमत दो हजार रुपया है। उसके एंजिनमें पेट्रोल जलाया जाता है। एंजिनकी शक्ति दोसे तीन घोड़ेतक की है। यह मैशीन एक गाड़ीपर रक्खी रहती है, जिसे पक्की सड़कपर आदमी आसानीसे खींच सकते हैं। इसका वजन कोई ४ मन है। इस मैशीनकी सहायतासे ६५ फिल्म दिखाये जा सकते हैं।

दूसरी मैशीनका नाम है—कोक। यह पहलीसे छोटी है। कीमत इसकी कोई ४०० रुपया है। यह आसानीसे उठाई जा सकती है। यह अपने ही भीतर बिजलीकी रोशनी पैदा करती है और इसके दस्तेको जरा घुमा देनेहीसे चलने लगती है। वजन इसका दस बारह सेर है। २ फुट लम्बे और उतने ही चौड़े चित्र इसके प्रकाशकी सहायतासे दिखाये जा सकते हैं। इसके फिल्मोंकी संख्या ४५ है। कृषि, उद्योग-धन्धे, विज्ञान, सफाई, युद्ध और हँसी-मजाक आदि कई विषयोंके दृश्य इसके फिल्मोंके द्वारा देखनेको मिलते हैं।

तीसरी मैशीन, "रेडिओपटिकन" नामकी बहुत छोटी है। उसका वजन सेर भरसे अधिक न होगा। कार्डोंपर ही छपे हुए चित्र उसकी सहायतासे दिखाये जा सकते हैं। इस मैशीनकी कीमत कोई १०० रुपया है। इसमें एक दोष है। एक तो इसका माल-मसाला चुक जानेपर देहातमें नहीं मिल सकता, दूसरे इसके बिगड़ जानेका डर भी लगा रहता है। इस कारण यह बाहर देहातको कम भेजी जाती है।

युद्धके समय मैजिक लैनटर्नके लेक्चरोंका प्रबन्ध इस प्रांतकी

गवर्नमेंटने भी कुछ दिनोंतक किया था। उसने कुछ आदमियोंको इस कामपर नियत कर दिया था। वे देहातमें गांव-गांव--विशेषकर उन गांवोंमे जहां मदरसे हैं--जाकर चित्र दिखाते फिरे थे। पर थे चित्र प्रायः सबके सब युद्धसम्बन्धी थे और अँगरेजी गवर्नमेंटकी जल, थल और व्योम-विहारिणी शक्तिके द्योतक थे। उनको दिखानेका मतलब कुछ और ही था, शिक्षा-दान नहीं। तथापि उनसे भी मनोरञ्जनके सिवा, कितनी ही नई-नई बातोंका ज्ञान देखनेवालोंको हो सकता था। जैसा प्रबन्ध महाराज बड़ौदाने अपने राज्यमें देहातियोंकी ज्ञानवृद्धिके लिये किया है। वैसा इस देशमें अन्यत्र कहीं भी सुननेमें नहीं आया। शिक्षा-विभागका सूत्र अब भारतीयोंहीके प्रतिनिधि, मन्त्रियोंके हाथमें आ गया है। अतएव, वे चाहें तो शिक्षा-दानकी इस प्रणालीका प्रचार अपने-अपने प्रान्तोंमें कर सकते हैं।

[अप्रैल १९२१]

१२

सन् १६२१ की मनुष्य-गणना

कौटिल्यके अर्थशास्त्रमे सूचित होता है कि इस देशमें चन्द्रगुप्तके समयमें भी मनुष्य-गणना होती थी। परन्तु वह ज़माना और तरहका था, आज-कलका ज़माना और तरहका। प्राचीनकालमें मनुष्योंकी संख्या स्थूल रूपसे मालूम कर ली जाती रही होगी; उससे वे सब बातें न मालूम की जाती होंगी जो आज-कल मालूम की जाती हैं। मनुष्य-गणना सम्बन्धी जो नक़शे आज-कल तैयार किये जाते हैं उनकी खाना पूरी सही सही करने से प्रत्येक सूबे, नगर और क़स्बेहीकी मनुष्य-संख्या नहीं ज्ञात हो जाती, किन्तु छोटे-छोटे गांवोंकी भी मनुष्य-संख्या मालूम हो जाती है। कितने नर और कितनी नारियां कहां रहती हैं, उनकी उम्र क्या है, उनका पेशा क्या है, वे अशिक्षित हैं या शिक्षित, शिक्षित हैं तो किस विषयकी शिक्षा उन्होंने पायी है, भाषाएं और लिपियां कौन-कौनसी वे जानते हैं—इत्यादि अनेक ज्ञातव्य बातें मनुष्य-गणनाके नक़शोंसे ज्ञात हो जाती हैं। इन नक़शोंके अध्ययनसे देशकी वास्तविक दशाका चित्र आंखोंके सामने आ जाता है। ये नक़शे आइनेका काम देते हैं। पिछली मनुष्य गणना से मनुष्य-संख्यामें वृद्धि हुई या ह्रास, यह तो मालूम ही हो जाता

है, ह्रास और वृद्धिके कारणोंपर विचार करनेके लिये भी सामग्री मिल जाती है। उससे ह्रासके कारणोंको दूर करनेके उपाय भी निकाले जा सकते हैं। ये सब बातें बड़े लाभकी हैं। राजपुरुषों और राज-कर्मचारियोंके लिये मनुष्य-गणनाका फल जानना और उससे लाभ उठाना तो अनिवार्य ही सा है। सब-साधारणको भी उससे जानकारी प्राप्त करना चाहिये। जो लोग देश-हित-चिंतक हैं—जो लोग प्रजाके नायक बनकर उसकी भलाई करनेके व्रतके व्रती हैं—वे चाहें तो मनुष्य-गणनाके आधारपर बहुत-कुछ देशहित कर सकते हैं।

मनुष्य गणनाके महत्वके कारण ही अँगरेजी गवर्नमेंट हर दसवें साल भारतमें रहनेवाले मनुष्योंकी गिनती करके उनकी वृद्धि या ह्रासका पता लगाती है। फिर वह उनके आधारपर बड़ी बड़ी रिपोर्टें तैयार करके भिन्न-भिन्न बातोंपर विचार करती है। उन को देखनेसे देशकी दशाका सच्चा हाल मालूम हो जाता है। इन रिपोर्टोंके अनेक अंशोंको सरकारी कर्मचारी जिस दृष्टिसे देखते हैं, प्रजाके प्रतिनिधि उस दृष्टिसे नहीं देखते। इन दोनों पक्षोंकी दृष्टि-योंमें भिन्नता रहती है। एक उदाहरण लीजिये। कल्पना कीजिये कि १९११की अपेक्षा १९२१की गणनासे यह मालूम हुआ कि संयुक्त-प्रान्तोंकी आबादीमें १३ लाख आदमियोंकी कमी हो गयी। इस कमीका कारण बताते हुए सरकारी रिपोर्टका लेखक बहुत होगा तो यही कहेगा कि अकाल (अवर्षण) या किसी रोग विशेष के कारण बहुत नर-नाश हुआ—जितने बच्चे उत्पन्न हुए उनकी

अपेक्षा मरे अधिक मनुष्य। इसीसे आबादी कम हो गई पर प्रजा के प्रतिनिधि यदि इस घटनाकी आलोचना करेंगे तो ह्रास के कारणोंपर विचार करते समय सरकारको उसके कर्तव्यकी भी याद दिलाये बिना न रहेंगे। वे कहेंगे—जिस प्रजाके आप माँ-बाप बनते हैं और जिससे प्राप्त हुए रुपयेकी बदौलत बड़े-बड़े राज-कर्मचारी गुलछर्रे उड़ाते हैं उसके हितके लिये आपने अपने धर्मका पूर्ण पालन क्यों नही किया? जिन मारक रोगोंके कारण इतना जन-नाश हुआ उन्हें दूर करनेके लिये आपने उपाय क्यों नहीं किये? और किये भी तो काफी क्यों नहीं किये? मारक रोगोंका आविर्भाव क्या अन्य देशोंमें नहीं होता? वहां इतने मनुष्य क्यों नहीं मरते? इसीलिये न कि वहांकी सरकार सफाई और तन्दुरुस्तीका अधिक खयाल रखती है, चिकित्साका प्रबन्ध अधिक अच्छा करती है, मनुष्य-संख्याके अनुसार ही दवाखाने कायम करती और उन्हे बढ़ाती रहती है। आपने ये सब काम यथेष्ट नहीं किये। इसीसे इतने अधिक आदमी मर गये। अतएव इस व्यर्थ नर नाशके उत्तरदाता आप भी हैं। अस्तु।

पिछली मनुष्य गणना १८ मार्च १९२१को हुई थी। उसकी आलोचनात्मक पूरी रिपोर्ट निकलनेमें तो वर्षोंकी देरी है। पर कच्चा चिट्ठा तैयार हो गया है और सरकारकी कृपासे गैजट आव इण्डियामें छप भी गया है। उससे मालूम हुआ कि जिस दिन—दिन क्यों रातको—आदमियोंकी गिनती हुई थी उस दिन इस देशकी आबादी ३१,९०,७५,१३२ थी। अर्थात अंगरेजी शासनके

अधीन भारतमें २४,७१,२८,३९६ और देशी राज्यों और रिया-सतोंमें ७,१९,३६,७३६ मनुष्य थे। दस वर्ष पहले, १९११में जब मनुष्य-गणना हुई थी तब—

गवर्नमेण्ट-शासित भारतकी आबादी थी २४,३९,३३,१७८

और

देशी राज्योंकी थी	७,१२,२३,२१८
कुल भारतकी	३१,५१,५६,३९६

अर्थात् पिछले दस सालोंमें केवल ३९ लाख आदमियोंकी वृद्धि हुई। इसका औसत पड़ा फी सदी १.२ अर्थात् सैकड़े पीछे सवा आदमीसे भी कम वृद्धि हुई। पर १९११ ईसवीमें जब मनुष्य गणना हुई थी तब १९०१ और १९११ के बीच २ करोड़से भी अधिक आबादी बढ़ी थी। उस वृद्धिका औसत पड़ा था फी सदी ६.५। कहां सैकड़े पीछे ६॥, कहां एक या सवा! सो पिछले क्रमके अनुसार आबादीका बढ़ना तो दूर रहा, फी सदी ५ से भी अधिक वह कम हो गयी—कोई डेढ़ करोड़से भी अधिक आदमी हिसाबसे ज्यादा मर मिटे। वृद्धिका जो औसत १९११की मनुष्य-गणनामें पड़ा था वही ;यदि इस बार भी पड़ता तो कई करोड़ आबादी और बढ़ जाती। पर यहां तो घरके धान भी पुवालमें चले गये। पिछली वृद्धिसे इस दफे दस सालमें अधिक वृद्धि होनी चाहिये थी;सो न होकर उस पिछली वृद्धिका भी औसत घट गया! इसे इस देशका दुर्भाग्य कहें या उस गवर्नमेंटका दुर्भाग्य जो अपने को संसारमें सभ्य-शिरोमणि समझती है और मौके-बे-मौके सदा

ही कहा करती है कि उसे भारतके अशिक्षित, अधभुखे या मर-भुखे मनुष्योंके सुख—दुःखका खयाल और सबसे अधिक है।

आबादीमें इतनी कमी कैसे हुई, इसके कारण सुनिये। सरकार फरमाती है कि—

पिछले दस सालके मध्यतक फसल अच्छी हुई। बारिश भी खासी हुई। कोई रोग-दोष भी वैसे नहीं हुए। अतएव प्रजा-वृद्धि के प्रायः सभी सामान काफी थे। उसीसे १९१३ ईसवीमें खूब बच्चे पैदा हुए और मृत्यु-संख्या भी कम ही रही। पर १९१८ में इनफ्लूएंजाने गजब ढा दिया। मृत्यु संख्या पिछले सालसे दूनी हो गई। १९१८ के कुछ ही महीनोंमें सिर्फ ब्रिटिश-गवर्नमेंटके शासित प्रदेशों में ७० लाख आदमियोंके लिये लोगोंको "राम नाम-सत्य है"—इस वाक्यका उच्चारण करना पड़ा। इसमारक रोगके कारण प्रजाकी जनन-शक्तिभी कम हो गई। फल यह हुआ कि १९१८और १९१९में जितने आदमी मरे उससे बहुत कम पैदा हुए। १९१७ और १९१८में प्लेगने भी बहुत कुछ जन-नाश किया। हैजेने भी बहुतोंको यमपुरीको पधराया। दादमें खाज यह हुई कि पिछले वर्षोंमें जहाँ-तहाँ अवर्षणने भी भारतपर भारी कृपा की। इसी से भारतकी मनुष्य-संख्या बढ़नेके बदले बहुत कुछ घट गयी। इसे जी चाहे दैवदुर्विपाक समझिये; जी चाहे भारतका दुर्भाग्य। जगन्नियन्ताको यही मंजूर था। प्लेग, इनफ्लूएन्जा और अवर्षण दैवी-दुर्घटनाएँ हैं। उन्हें दूर करना मनुष्यके वशकी बात नहीं।

सरकारने ये पिछली बातें यद्यपि खुले शब्दोंमें कहीं नहीं,

तथापि उसके लिखनेके ढङ्गसे यही जान पड़ता है कि मारक रोगों और अवर्षणोंकी मारसे प्रजाकी यथेष्ट रक्षा कर सकना उसकी शक्तिके बाहरकी बात है।

अच्छा, तो ये दैवी दुर्घटनाएं और रोग-दोष आदिक व्याधियाँ और देशोंको भी सताती हैं या नहीं? इनका अवतार या आविष्कार केवल भारतहीके लिये तो है नहीं। और देशोंमें भी पानी नहीं बरसता। वहां भी प्लेग, हैजा, बुखार, इनफ्लूएंजा आदि रोग प्रजापीड़न करते हैं। फिर क्या कारण है जो वहांके लोग खूब फूल-फल रहे हैं, खूब बढ़ रहे हैं, खूब अपनी उन्नति कर रहे हैं? अँगरेजोंहीके देश इंग्लेंड और वेल्समें १९११ ईसवीमें जन-संख्याकी वृद्धि लगभग ११ फी सदीके हिसाबसे हुई थी। वृद्धिका यह क्रम बहुत कम था—१८४१ ईसवीसे लेकर १९११ तक इतनी कम वृद्धि कभी न हुई थी। तथापि भारतकी फी सदी ६.५ वृद्धिसे वह भी कुछ कम दूनी थी! यदि ये सब व्याधियां ईश्वर-निर्म्मित मान ली जायँ तो इँग्लेंड और भारतके ईश्वर अलग-अलग दो तो हैं ही नहीं। वही ईश्वर वहाँ है, वही यहाँ। भारतमें सब प्रकारकी खाद्य-सामग्री उत्पन्न होती या हो सकती है। खनिज पदार्थ भी यहाँ अधिकतासे पाये जाते हैं। नदियाँ भी अनेक हैं। अधिवासी यहाँके परिश्रमी और समझदार हैं। फिर क्या कारण कि यहींके लोग मरें तो अधिक, पर पैदा हों कम। बात यह जान पड़ती है कि गवर्नमेंट प्रजाकी रक्षा करने, उसके लिये तन्दुरुस्ती कायम रखनेके यथेष्ट साधन प्रस्तुत करने

और अवर्षणके साल आबपाशीके कृत्रिम द्वार खोलनेका काफी प्रयत्न नहीं करती। जहाँ दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह कोस तक एक भी सरकारी शफाखाना नहीं वहाँ हैजा या इनफ्लूएजा फैल जानेपर लोग यदि धड़ाधड़ मरते चले जायँ तो क्या आश्चर्य। यह दशा और देशोंमें नहीं। इससे पूर्वनिर्दिष्ट कारण या व्याधियाँ उपस्थित होनेपर भी वहाँ इतना नर-नाश नहीं होता। वहाँ २४ घंटेमें सबके पेट कमसे कम दो दफे—अधिकांशके तीन दफे—भर जाते हैं। यहाँ भारतमें करोड़ों आदमियोंको दिनमें एक दफे भी पेटभर खानेको नहीं मिलता। इससे वे अशक्त रहते हैं, रोगके साधारण धक्केसे भी मर जाते हैं; प्रजोत्पादनकी शक्ति भी वे कम रखते हैं। राजाका कर्तव्य है कि वह इन कारणोंको दूर करनेका यथेष्ट यत्न करे, क्योंकि अपनी रक्षाहीके लिये प्रजा उसे कर देती है। उसके दिये हुए कर-धनका अधिकांश फौज-फाटा रखने और रेलें बनानेहीमें खर्च कर डालना, राजाका प्रधान कर्तव्य नहीं। प्रधान कर्तव्य उसका है प्रजा को निरोग रखना, बीमार पड़नेपर उसकी चिकित्साका प्रबन्ध करना, पानी न बरसनेपर सिंचाईके साधन प्रस्तुत करना, भूखोंको पेट पालनेके द्वार उन्मुक्त करना और अशिक्षितोंको शिक्षा देना है। यदि ये सब बातें होतीं तो भारतकी आबादी बहुत बढ़ जाती, रोगोंसे इतना मनुष्य-नाश न होता और यहाँके निवासी भी और देशोंकी तरह खुशहाल होते।

इस दफेकी मनुष्य-गणनासे मालूम हुआ कि ३१९०७५१३२

मनुष्योंमें १६,४०,५६,९९१ तो पुरुषजातिके हैं और बाकी १५,९०,१८, ९४१ स्त्री-जातिके। अर्थात् पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ कम हैं। सूबे बिहार और मदरासको छोड़कर और सभी प्रान्तोंका यही हाल है। इन दो प्रान्तोंमें तो पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक हैं, अन्यत्र सब-कहीं कम। यह कमी विचार करने योग्य है। सारे देशमें प्रायः १ करोड़ स्त्रियाँ कम हैं। स्त्रियोंकी संख्यामें विशेष कमी हो जानेसे फीजी टापू की तरह कितना अनिष्ट हो सकता है और कितने अपराध और पाप हो सकते हैं, यह कौन नहीं जानता। किसी-किसी प्रान्तमें यह विषमता बहुत ही बढ़ गयी है। उदाहरणके लिये पंजाबको लीजिये। वहाँ पुरुषों की अपेक्षा २० लाखके भी ऊपर स्त्रियाँ कम हैं। यह विषमता भावी अनिष्टकी सूचक है। देखिये, गवर्नमेंट अपनी रिपोर्टमें इस ह्रास या कमीका क्या कारण बताती है।

नीचे हम प्रत्येक प्रांतकी जन-संख्या देते हैं और यह भी बताते हैं कि आबादीमें कितना ह्रास या कितनी वृद्धि हुई है —

प्रांत	जन-संख्या	वृद्धि + ह्रास — फी सदी
१—अजमेर-मेरवारा	४,९५,८९९	— १.१
२—अंडमन और नीकोबार	२६,८३२	+ १.४
३—आसाम	७५,९८,८६१	,, १३.२
४—बलूचिस्तान	४,२१,६७९	,, १.८
५—बङ्गाल	४,६६,९३,१७७	,, २.६
६—बिहार और उड़ीसा	३,३९,९८,७७८	— १.४

प्रान्त	जन-संख्या	वृद्धि + ह्रास - की सदी	
७—बम्बई	१,९३,३८,५८६	—	१.८
८—ब्रह्मदेश	१,३२,०५,५६४	+	९.०
९—मध्यप्रदेश और बरार	१,३९,०८,५१४	—	.१
१०—कुर्ग	१,६४,४५९	—	६.०
११—देहली	४,८६,७४९	+	१७.७
१२—मद्रास	४,२३,२२,२७०	,,	२.२
१३—पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रांत	२२,४७,६९६	,,	२.३
१४—पञ्जाब	२,०६,७८,३९३	,,	५.६
१५—संयुक्त-प्रांत	४,५५.९०,९४६	—	२.६

अकेले बङ्गालको छोड़कर अपने प्रांतकी आबादी और सभी प्रांतोंसे अधिक है। पर बगालमें तो २॥ फी सदीके करीब जन-संख्यामें वृद्धि हुई; पर अपने प्रान्तमें ठीक उतनी ही कमी हो गई। बंगालके निवासी अधिक सुशिक्षित हैं और उनकी आमदनी भी शायद अधिक है। अपने प्रान्तमें ये बातें नहीं। बीमार होनेपर चिकित्साकाभी यथेष्ट प्रबन्ध नहीं। भूखे और निर्धन मनुष्य रोगों का अधिक शिकार जरूर ही होते हैं। आश्चर्य नहीं, जो यहां इतने मनुष्य कम होगये। अगर यह प्रान्त बंगालकी अपेक्षा अधिक कर देता हो अथवा उससे बहुत कम न देता हो तो यह इस प्रान्त का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये जो उसकी रक्षाका ठीक-ठीक प्रबन्ध नहीं किया गया। क्योंकि मौतसे बचानेकेजो साधन मनुष्य के हाथमें हैं उनसे यदि पूरे तौरपर काम लिया जाता तो बहुत

सम्भव था कि इतना नर-नाश न होता।

अच्छा, अब अपने प्रान्तके जिलोंका हाल देखिये। प्रत्येक जिलेकी आबादी न देकर हम केवल प्रत्येक कमिश्नरी हीकी आबादी नीचे देते हैं—

कमीश्नरी	आबादी	फी सदी वृद्धि + या ह्रास —
१—मेरठ	४७,१०,६७५	+ १.८
२—आगरा	४१,८३,७१४	— ७.३
३—रुहेलखण्ड	५१,९७,३८२	— ८.०
४—इलाहाबाद	४७,९१,९५७	—३.१
५—झाँसी	२०,६५,७६२	—६.४
६—बनारस	४४,४८,५८४	कमी हुई पर .१ से भी कम
७—गोरखपुर	६७,२९,१२२	+ ३.१
८—कमायूँ	१२,९३,४३९	— २.७
९—लखनऊ	५५,७०,८४३	— ५.८
१०—फैजाबाद	६५,९९,४६५	— .७

सिर्फ मेरठ और गोरखपुरकी कमिश्नरियोंको छोड़कर और सब कहीं ह्रास, ह्रास, ह्रास! किसी-किसी जिलेमें तो फी सदी ८, ९, १०, ११ और १४ तक मनुष्य-संख्या घट गयी! बढ़ी है मेरठमें १३ फी सदी, बस्तीमें ५ फी सदी, गोरखपुरमें दो फी सदी और देहरादूनमें ३ फी सदी। कुछ ही जिले और हैं जिनमें कुछ थोड़ी-थोड़ी वृद्धि हुई है। और कहीं नहीं। सरकारी नक्शोंमें जहाँ देखो, वहीं ऋणका चिह्न (—) लगा हुआ है। यदि मनुष्य

गणनासे भी किसी देश, प्रान्त या जिलेके पतन या उत्थान, सुख-समृद्धि या दीनताका अन्दाजा लगाया जा सकता है तो अपने प्रान्तकी बहुत-कुछ सच्ची स्थितिका पता लगानेके लिये पिछली मनुष्य-गणनाके नक्शोंमें काफी सामग्री विद्यमान है।

[जुलाई १९२१]

१३

जापान और भारतमें शिक्षाका तारतम्य ।

इण्डियन सोशल रिफार्मर नामक पत्रमें एक लेख शिक्षा-प्रचार-विषयक प्रकाशित हुआ है। उसमें यह दिखाया गया है कि जापान और भारतमें शिक्षाकी क्या दशा है। इन दोनों देशों में शिक्षा-प्रचारका तारतम्य देखकर इस बातपर अफसोस—बहुत अफसोस—होता है कि जापानके मुकाबलेमें भारतवर्ष अत्यन्त ही पिछड़ा हुआ है। जिस जापानमें नई सभ्यताकी जागृति हुए अभी ८० वर्ष भी नहीं हुए, वही जापान इस विषयमें हजारों वर्षके सभ्य और शिक्षित भारतवर्षसे बाजी मार ले जाय, यह इस देशका परम दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। इसका दोष हम नहीं जानते, किसपर मढ़ें—अपने दुर्दैवपर या उस शासनपर जिसका कर्तव्य इस देशमें शिक्षा-प्रचार करना है और जो कोई डेढ़ सौ वर्षसे यहाँ अपना पराक्रम प्रकट कर रहा है।

भारतका जो अंश अँगरेजी गवर्नमेंटके अधीन है उसकी जन-संख्या २४ करोड़ ७० लाख है और जापानकी सिर्फ ६ करोड़ २ लाख। अर्थात् जापानकी अपेक्षा भारतकी आबादी चौगुनीसे भी अधिक है। यदि स्कूल जाने योग्य उम्रके बच्चोंकी संख्या फी सदी १५ मान ली जाय तो भारतमें ऐसे बच्चोंकी संख्या ३ करोड़

७ लाख और जापानमें ९० लाख होती है।

अब आप यह देखिये कि इन दोनों देशोंमें मदरसे, मकतब, स्कूल और कालेज कितने हैं। इनमें आप विश्वविद्यालयोंको भी शामिल समझिये। इन सब प्रकारके शिक्षालयोंकी संख्या भारतमें तो २,२८,२२९ है, और जापानमें केवल ४४,३५५। इसका यह अर्थ हुआ कि जापानकी अपेक्षा भारतमें शिक्षाके साधन पाँच गुने अधिक हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखकर आप यह देखिये कि इन शिक्षालयोंमें, दोनों देशोंमें; कितने छात्र शिक्षा पाते हैं। भारतमें इनकी संख्या केवल ९८ लाख, पर जापानमें १ करोड़ १० लाख है! देखा आपने! भारतकी आबादी जापानसे चौगुनी और शिक्षालय वहाँ की अपेक्षा पँचगुने हैं। पर यहाँके मुकाबलेमें जापानमें कोई दस लाख बच्चे अधिक शिक्षा पा रहे हैं। जिन बच्चोंकी उम्र स्कूल जाने योग्य है उनमेंसे जो बच्चे यहाँ सब तरहके स्कूलोंमें शिक्षा पा रहे हैं उनका औसत आबादीके लेहाजसे फी सदी ४ से भी कम है। परन्तु जापानमें वही १९ फी सदी है। इससे यह सूचित हुआ कि भारतमें जहाँ १५ बच्चोंको स्कूल जाना चाहिये था वहाँ केवल ४ जाते हैं और बाकीके ११ या तो मवेशी चराते या गिल्ली-डंडा खेला करते हैं। इस दशामें यहाँ मूर्खता और निरक्षरताका साम्राज्य न छाया रहे तो कहाँ रहे। शिक्षा ही सारे सुखों और सारे सुधारोंकी जड़ है। पर राजाका न सही भगवानका उसी ओर दुर्लक्ष्य है। हाय रे दुर्दैव!

भारतमें अर्थकरी शिक्षाकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है। यहाँकी शिक्षाकी बदौलत क्लर्क, मुहर्रिर, लेखक, स्कूल-मास्टर ही अधिकतर पैदा होते हैं और सारी उम्र कलम घिसते-घिसते बिता देते हैं। उच्च शिक्षा पाये हुए युवक बहुत हुआ तो, वकील बनकर अदालतोंकी शोभा बढ़ाते और दीन-दुखियों-का धन स्वाहा करानेमें सहायक होते हैं। फिर भी सबको काम नहीं मिलता। ३० रुपयेकी जगह खाली होनेका यदि कोई विज्ञा-पन निकलता है तो हजारों युवक टिड्डी-दलकी तरह विज्ञापन-दाताके ऊपर टूट पड़ते हैं। जापानमें यह दुर्गति नहीं। वहाँ अर्थकरी शिक्षा देनेकी ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। जापानके प्रारम्भिक मदरसोंमें जितने विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं उनसे कुछ ही कम अर्थकरी शिक्षा देनेवाले शिक्षालयोंमें पाते हैं। ये शिक्षालय अनेक प्रकारके हैं। उनमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी ऐसी शिक्षा दी जाती है जिसकी कृपासे लड़के और लड़कियाँ स्कूल छोड़ते ही चार पैसे पैदा करने लगती हैं। ध्यान इस बात-का रक्खा जाता है कि स्कूलसे निकलनेपर कोई लड़का या लड़-की बेकार न रहे; वह कुछ-न-कुछ काम कर सके, वह किसीपर भारभूत होकर देशकी दरिद्रता न बढ़ावे। जिन स्कूलोंमें इस तरहकी अर्थकरी शिक्षा दी जाती है उनमें साथ ही, साधारण शिक्षा—अर्थात् लिखने, पढ़ने, हिसाब, भूगोल इतिहास, आदिकी भी शिक्षा—दी जाती है। जापानमें इस तरहके स्कूलोंका बहुत आधिक्य है। वहाँके निवासी इन स्कूलोंसे लाभ भी बहुत उठाते

हैं। वे इनका महत्व समझते हैं। अतएव मध्यवित्तके प्रायः सभी लोग अपने बच्चोंको इन स्कूलोंमें पढ़ने भेजते हैं। नतीजा यह हुआ है कि पिछले दसही वर्षोंमें इन स्कूलोंकी संख्या दूनी हो गयी है। परन्तु भारतका यह हाल है कि प्रारम्भिक मदरसों के बाद केवल वे स्कूल हैं जिन्हें मिडिल स्कूल कहते हैं। उनमें भी प्रायः उसी तरहकी शिक्षा दी जाती है जिस तरहकी कि प्रारम्भिक मदरसोंमें दी जाती है। जो बच्चे प्रारम्भिक मदरसों-की शिक्षा समाप्त कर चुकते हैं उनमेंसे फी सदी १० से अधिक बच्चे इन मिडिल मदरसोंमें नहीं जाते। फल यह होता है कि उनमेंसे ९० फी सदी घर ही बैठे रहते हैं और देश तथा अपने कुटुम्बकी अर्थहीनताकी वृद्धि करते हैं। यदि भारतमें भी इस तरहके स्कूल खुल जाते तो जो बच्चे प्रारम्भिक मदरसे छोड़कर घर बैठ रहते हैं उनमेंसे बहुतेरे इन स्कूलोंमें भरती होकर चार पैसे पैदा करने योग्य अवश्य हो जाते।

अब जरा शिक्षा-सम्बन्धी खर्चका हिसाब भी देख लीजिये। अपने देश अभागे भारतकी, गवर्नमेंट सब प्रकारकी शिक्षाके लिये सालमें कुछ ही कम १० करोड़ रुपया खर्च करती है अर्थात् आबादीके लेहाजसे फी आदमी कोई ६ आने खर्च करके सरकार भारतवासियोंको शिक्षा देती है। अच्छा तो इन्हीं भारतवासियोंसे करके रूपमें सरकारको सालमें क्या मिलता है। जनाबे आली, उसे उनसे २ अरब २२ करोड़ रुपयेसे कम नहीं मिलता। अर्थात् हम लोगोंसे इतना रुपया वसूल करके उसमेंसे फी सदी पाँच ही

रुपया वह मुश्किलसे हमारी शिक्षाके लिये खर्च करती है। बाकी रुपया वह .फौज, रेल, जहाज़ और नौकर-चाकरोंकी तनख्वाहमें उड़ा देती है। जापानमें यह बात नहीं। वहाँकी गवर्नमेंटको रियायासे करके रूपमें जितना रुपया मिलता है उसका फी सदी १५ वह शिक्षा-प्रचारके काममें खर्च कर देती है। उसका यह खर्च भारतके खर्चसे तिगुना है। इसीलिये हमारे देशकी गवर्नमेंटपर कोई-कोई यह लाञ्छन लगाते हैं कि वह हमें शिक्षित बनानेमें जान-बूझकर आना-कानी या शिथिलता कर रही है। यह ठीक हो या न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि जापानके मुकाबलेमें यहाँ शिक्षाके लिये बहुत कम खर्च किया जाता है। उसकी प्रचार-वृद्धिकी यथेष्ट चेष्टा नहीं की जाती। भारतमें जहाँ शिक्षाका खर्च फी आदमी आठ आने भी नहीं, वहाँ जापानमें आठ रुपया है।

एक बात और भी है। वह यह कि भारतमें छात्रोंकी फीस दिन-पर-दिन बढ़ती ही जाती है। पर जापानमें वह दिन-पर-दिन कम होती जाती है।

शिक्षाहीसे मनुष्य-जन्म सार्थक होता है। उसीसे मनुष्य अपनी सब प्रकारकी उन्नति कर सकता है। उसीकी दुरवस्था देख किस समझदार भारतवासीको परमावधिका परिताप न होगा।

[जनवरी १९२७]

१४

अमेरिकामें कृषि-कार्य

संसार परिवर्तनशील है। यहाँ कोई भी चीज सदा एक ही सी दशामें नहीं रहती। समयानुसार सबमें परिवर्तन होता है। जिस देश या जिस समाजके लोग समयकी स्वाभाविक गतिपर ध्यान नहीं देते, उस समाजका अधःपतन अवश्य ही होता है।

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँकी भूमिमें जितनी उर्वराशक्ति है उतनी शक्ति बहुत ही कम देशोंकी भूमिमें होगी। कृषि-कार्यके योग्य जितनी भूमि यहाँ है उतनी शायद ही और किसी देशमें हो। फिर भी हमारे देशके किसानोंको भर-पेट भोजन नहीं मिलता। दूसरे देशोंके किसान सर्वथा सुखी और भारतके प्रायः सर्वथा ही दुखी हैं। अच्छा, इस अन्तरका कारण क्या? यह तो कही नहीं सकते कि यहाँके किसान परिश्रमी नहीं, क्योंकि उन्हें बारह-बारह घण्टे काम करते हम प्रत्यक्ष देखते हैं।

भारतवर्षमें कृषकोंकी दुरवस्था और निर्धनताके कई कारण हैं। एक तो यहाँ किसानोंमें शिक्षाका अभाव है। दूसरे यहाँकी गवर्नमेंटने देशके कुछ अंशको छोड़कर अन्यत्र सभी कहीं भूमि को अपने अधिकारमें कर रक्खा है। वही उसकी मालिक बनी बैठी है। अतएव उसने भूमिके लगान और मालगुजारीके

सम्बन्धमें जो कानून बनाये हैं वे बहुत ही कड़े हैं। फिर जहाँ-कहीं तअल्लुकेदारियाँ हैं वहाँ किसानोंके सुभीतेका कम, तअल्लुकेदारोंके सुभीतेका अधिक खयाल रक्खा गया है। यही सब कारण हैं जो किसानोंको पनपने नहीं देते।

जितने सुशिक्षित और सभ्य देश हैं वे वैज्ञानिक ढङ्गसे कृषि करते हैं। फल यह हुआ है कि वे मालामाल हो रहे हैं। पर भारतमें शिक्षाके अभाव अथवा कमी तथा निर्धनताके कारण इस प्रकारकी नवाविष्कृत खेती हो ही नहीं सकती। हाँ, जो लोग पढ़े-लिखे और साधन-सम्पन्न हैं वे यदि चाहें तो पश्चिमी देशोंके ढङ्गकी खेती करके बहुत लाभ उठा सकते हैं। परन्तु खेद है, उनका भी झुकाव इस तरफ नहीं। इसे ईश्वरी कोप ही कहना चाहिये। जबतक देशकी यह दशा रहेगी—जबतक शिक्षित जन-समुदाय कृषि-कार्यकी ओर ध्यान न देगा—और जबतक अभिनव आविष्कारोंसे काम न लिया जायगा तबतक कृषिकारों की दरिद्रता दूर न होगी। देशको समृद्धिशाली करनेके लिये वैज्ञानिक प्रणालीसे कृषि करनेकी बड़ी ही आवश्यकता है।

इस समय भारतकी जैसी अवस्था है, कोई ३०० वर्ष पहले संयुक्त-देश, अमेरिकाकी भी ठीक वैसी ही, किम्बहुना उससे भी बुरी दशा थी। वर्जिनिया इस समय उस देशका एक प्रधान और विशेष समृद्ध प्रान्त गिना जाता है। परन्तु १६०७ ईसवीमें कप्तान जान स्मिथ नामके एक आदमीने वहाँके कृषकोंको नितान्त हीना-वस्थामें देखा था। उस समय वहाँ एक मामूली हलसे

ज़मीन जोती जाती थी। ज़मीन खोदनेके लिये फावड़ेके बजाय एक प्रकारकी लकड़ीसे काम लिया जाता था। ज्वार ओखली और मूसलसे उसी तरह कूटी जाती थी जिस तरह हमारे यहाँ अबतक कूटी जाती है। कुल्हाड़ीसे काटकर पेड़ गिराना लोगोंको मालूम ही न था। वे वृक्षके नीचे आग जलाकर उसे गिराते थे। खेतीका सारा काम हाथसे होता था।

अमेरिका नौ-आबाद देश है। भिन्न-भिन्न देशोंकी फालतू आबादी वहाँ जा बसी है। योरपके निवासी वहाँ जैसे-जैसे जाते और बढ़ते गये वैसे-ही-वैसे उन्हें खेतीमें उन्नति करनेकी सूझती गयी। अपने जन्म-देशमें जिस तरह खेती होती थी उसी तरह उन्होंने वहाँ भी कृषि-कार्य करनेका निश्चय किया। अमेरिकामें भूमिकी कमी तो थी ही नहीं। एक-एक कृषकको सौ-सौ-दो-दो सौ बीघे भूमि आसानीसे मिल जाती थी। इतनी भूमिमें पुराने ढङ्गसे हाथोंहीकी बदौलत खेती करना सम्भव भी न था। अतएव उन्हें कलें—मैशीनें ईजाद करनेकी सूझी।

पहले-पहल वहाँवालोंने पनचक्कीका आविष्कार किया। उससे एक दिनमें सैकड़ों मन आटा पिसने लगा। देखकर लोग हैरतमें आ गये। दूर दूरसे लोग आटा पिसाने आने लगे। चक्कीके मालिकको खूब मुनाफ़ा होने लगा। कुछ ही दिनोंमें वह अमीर हो गया। उसे इस तरह कामयाब हुआ देख और लोगोंने भी उसका अनुकरण किया। धीरे-धीरे एञ्जिनोंसे और कुछ समय बाद, बिजलीसे ये चक्कियाँ चलने लगीं।

इसके बाद योरपसे जाकर अमेरिकामें बस जानेवालोंने हवा से काम लेनेकी युक्ति निकाली। उन्होंने पानी खींचने और ऊपर चढ़ानेके लिये एक ऐसी कल निकाली जो हवासे चलती थी। इस कलसे खेत सींचनेमें बहुत सुभीता हुआ। इस तरहकी कलें अमेरिकामें कहीं-कहीं अब भी देखनेको मिलती हैं। अब तो वहाँ ऐसे-ऐसे पम्प ईजाद हो गये हैं जिनसे काम लेनेके लिये एञ्जिन लगे हुए हैं और जिनसे सैकड़ों बीघे जमीनमें बोई हुई फसलें बात-की-बातमें सींच दी जाती हैं। इन्हीं एञ्जिनोंकी सहायतासे चलायी गयी अन्य कलें भी अनेक काम करती हैं। उनसे कुट्टी काटी जाती है, लकड़ी चीरी जाती है, अनाज कूटा जाता है और आटा भी पीसा जाता है। बस, अकेले एक एञ्जिनसे ये सब काम हो जाते हैं। यह तरक्की वर्तमान कालकी है।

१८०० ईसवीके लगभग कुछ लोग घोड़ों और कुत्तोंसे भी काम लेने लगे। गन्नेका रस निकालने तथा और भी कुछ काम करनेके लिये उन्होंने ऐसी कलें निकालीं जो घोड़ों और कुत्तोंसे चलायी जाती थीं। अमेरिकाके दक्षिणी भागमें रहनेवाले हबशी अबतक कहीं-कहीं ऐसी कलोंसे काम लेते देखे जाते हैं।

१८०७ ईसवीमें संयुक्त-देश (अमेरिका) के निवासियोंने भाफ की शक्तिका ज्ञान प्राप्त किया और उससे काम लेनेकी ठानी। राबर्ट फुल्टन नामके एक आदमीने एक ऐसी नाव ईजाद की जो भाफकी सहायतासे चलने लगी। उसमें उसने एञ्जिन लगाया और न्यूयार्क नगरसे अलबनीतक उसीपर उसने हडसन नदी पार

की। उसके इस कार्यने अमेरिकावालोंकी आँखें खोल-सी दीं। बस फिर क्या था, भाफकी शक्ति मालूम हो जानेपर लोग भाफसे चलनेवाले एञ्जिनोंके पीछे पड़ गये। जगह-जगह एञ्जिन लग गये और नये-नये कल कारखाने खुलने लगे। खेतीके कामोंके लिये भी यही एञ्जिन लगाये जाने लगे। खेत काटना, भूसा उड़ाना, कटी हुई फसलोंको माँड़ना ये सभी काम एञ्जिनोंकी सहायतासे होने लगे। वहाँवालोंने पहले पानीसे काम लिया, फिर हवासे फिर घोड़ों और कुत्तोंसे और तदनन्तर भाफसे। अब तो वे लोग बिजली देवीको भी अपने वशमें किये हुए हैं और छोटे-बड़े हजारों काम उसीकी सहायतासे करते हैं।

अमेरिकाके कुछ बड़े-बड़े किसानोंकी जमीनके पास पानीके प्रवाही झरने हैं। ये कृषिकार अब इस फिक्रमें हैं कि उन झरनोंकी जल-धारासे बिजलीकी शक्तिउत्पन्न करके उसकी सहायतासे कलें चलावें और उनसे खेतीहीके नहीं, अपने घरेलू काम भी निकालें। उनके इस उद्योगमें किसी-किसीको सफलता भी हुई है। वे लोग अब झरनोंकी बिजलीसे कृषिके उपयोगी यन्त्रोंका संचालन करने भी लगे हैं। यह काम बड़े फायदेका है। इसमें एक ही दफे कील-कांटों और मैशीनोंमें जो खर्च होता है वह होता है पीछेसे इस काममें बहुत ही कम खर्च करनेकी जरूरत रह जाती है।

यह सब होनेपर भी १८३७ ईसवी तक अमेरिकामें खेतीके औजारों वगैरहमें विशेष उन्नति न हुई थी। भारतमें इस समय जैसे हल काम आते हैं;कुछ-कुछ उसी तरहके वहां भी काम आते

थे। उनसे ठीक काम न होता देख इलिनाइसके जान डियर नामक एक लुहारने लोहेका एक हल ईजाद किया। उस समय वहांके हल वजनी होते थे। उनसे वहांकी कड़ी जमीन अच्छी तरह जुतती भी न थी—उनके फाल जमीनमें गहरे न धँसते थे। डियरके लोहेके हलने इन दोषोंको दूर कर दिया। पहले तो लोगोंने उस-की इस ईजादकी दिल्लगी उड़ाई, पर जब उसके हलसे पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक और बहुत अच्छा काम होने लगा, तब वे लोग आश्चर्य चकित होकर उसकी प्रशंसा करने लगे। कई साल तक इन हलोंकी बहुत ही कम बिक्री हुई। परन्तु ज्यों-ज्यों उनकी उपयोगिता लोगोंके ध्यानमें आती गयी, त्यों-त्यों उनका प्रचार बढ़ता गया। १८३७से१८३९ ईसवी तक जान डियरके बनाये बहुत ही कम हल बिके। उसके बाद उनकी बिक्री बढ़ी और कोई १८ वर्षके भीतर ही डियरके कारखानेमें हरसाल दस हजार तक हल बनकर बिकने लगे। अब तो डियरका कारखाना बहुत ही बड़े पैमानेमें काम कर रहा है। वह इलिनाइस रियासतके मोलिन नामक स्थानमें है। उसमें एक हल तैयार होनेमें सिर्फ ३० सेकंड लगते हैं। हर फसलमें यह कारखाना कमसे कम दस लाख फाल तैयार करता है। उसमें कोई डेढ़ हजार आदमी काम करते हैं। हर साल इस कारखानेमें १० लाख मन लोहा,५ लाख मन कोयला, ११ लाख मन तेल और वार्निश, २५ लाख फुट लकड़ी और १२ लाख गैलन जलानेका तेल खर्च होता है।

जान डियरकी ईजादके बाद अमेरिकाके एञ्जिनियर और

काश्तकार खेतीके यन्त्र-निर्माणकी ओर और भी अधिक दत्त-चित्त हुए। तरह-तरहकी कलें ईजाद होने लगीं। उनकी बदौलत खेतीकी पैदावार बराबर बढ़ती ही चली गयी। वहाँ लाखों बीघे जमीन गैर आबाद पड़ी हुई थी। परन्तु जानवरोंकी मददसे चलनेवाले हलोंकी बदौलत उनका आबाद होना असम्भव-सा था। अतएव बहुत-कुछ माथा-पच्ची करनेके बाद एञ्जिनियरोंने भाफसे चलानेवाले बड़े-बड़े हल-समूहोंका आविष्कार किया। यह एक प्रकारकी कल है। आवश्यकता होनेपर इसमें एक ही साथ चौदह-चौदह हल जोड़ दिये जाते हैं। वे सब साथ ही कड़ीसे भी कड़ी जमीनको गहरी जोतते चले जाते हैं। जितना गहरा जोतना दरकार हो उतना ही गहरा जोतनेका प्रबन्ध इन हलोंमें है। फालोंको जरा नीचा-ऊँचा कर देनेहीसे यह काम आसानीसे हो जाता है। इन हलोंमें ऐसे पुर्जे लगे हुए हैं कि हल चाहे जितनी तेजीसे चल रहे हों फाल ऊँचे-नीचे किये जा सकते हैं। सामने पत्थर वगैरहके टुकड़े आजानेपर ये हल उनपर टक्कर न खाकर साफ आगे निकल जाते हैं। इस एक हलसे एक दिनमें ३६ एकड़ तक जमीन जोती जा सकती है। इन हलोंमें ऊपर बैठनेकी जगह रहती है। जैसे रेलका एञ्जिन चलानेवाला उसपर आरामसे बैठा रहता है उसी तरह इन हलों को चलानेवाला भी उन्हींपर बैठा रहता है। उसे उनके पीछे-पीछे दौड़ना नहीं पड़ता।

खेत जोत जानेके बाद उसको हमवार करने और ढेले

तोड़नेके लिये अब वहाँ सरावन या पहटा फेरनेका भी बढ़िया प्रवन्ध हो गया है। पहले वहाँ लकड़ीके काँटेदार पहटे होते थे। उनसे ठीक-ठीक काम न होता था। अब वहाँवालोंने लोहेका पहटा बना लिया है। उसमें दाँत या दाँतवे होते हैं। उसे घोड़े चलाते हैं। यदि एक तरफसे घोड़ा जोता जाता है तो वे दांतवे सीधे खड़े हो जाते हैं। यदि दूसरी तरफसे जोता जाता है तो वे तिरछे हो जाते हैं। मतलब यह कि जैसी ज़मीन बनानेकी जरूरत होती है वैसी ही उससे बना ली जाती है। अमेरिकामें एक और तरहका भी पहटा काममें लाया जाता है। उसमें दाँतवोंके बदले चक्र लगे रहते हैं। वे बहुत तेज होते हैं और बराबर घूमा करते हैं। उससे खेतकी मिट्टी खूब महीन और हमवार हो जाती है। उसे फेरनेवाला उसीपर सवार रहता है।

इसी तरह की और भी अनेक कलें अमेरिकामें ईजाद हुई हैं और रोज़मर्रा काममें आती हैं। उनसे बहुत अधिक काम होता है और खर्च तथा मिहनतमें बहुत बचत भी होती है। उन सबके उल्लेखके लिये इस लघु लेखमें स्थान कहाँ?

फ़सल तैयार होनेपर वह कलोंहीसे काटी और कलोंहीसे बाँधी जाती है। १८३१ ईसवी तक वहाँ भी हँसुवेहीसे फ़सल काटी और हाथोंहीकी मददसे बाँधी जाती थी। सौ-सौ दो-दो बीघोंमें बोये गये गेहूँ की फ़सल हँसुवेसे काटनेमें कितना समय लग सकता है, यह बतानेकी जरूरत नहीं। इस दिक़तको दूर करनेके लिये भी कई तरहकी कलें ईजाद हो गयी हैं। पहले

उनमें कुछ त्रुटियां थीं। अब वे नहीं रह गयीं। अब तो सैकड़ों बीघे गेहूँ की फसल ब त जल्द कलोंसे कट जाती है। १८५१ ईसवीमें कटी हुई फ़सलको तारोंसे बाँध डालनेकी मैशीन भी बन गयी, वही अब बाँधनेका काम करती है। उससे बाँधे गये गट्ठे खलिहानमें खोलकर सुखाये जाते हैं। सूख जानेपर वे माँड़नेवाली मैशीनके सिपुर्द कर दिये जाते हैं। एक आदमी लाँकको कलमें डालता जाता है। कल उसकी बालों को अलग और डंठलोंको अलग कर देती है। बालोंका दाना निकलकर ढेर हो जाता है। तब वह एक पंखेदार मैशीनसे साफ़ कर लिया जाता है। इस प्रकार स्वच्छ अनाज अलग हो जाता है और भूसा अलग। डंठलोंको तोड़कर भूसा बनानेकी मैशीनें अलग ही हैं। वे सैकड़ों—हज़ारों-मन भूसा बहुत आसानीसे तैयार कर देती हैं।

संयुक्त-देश (अमेरिका) में आलू बहुत पैदा होता है। उसे बोनेके लिये भी छोटी-बड़ी कई तरहकी मैशीनें काममें लायी जाती हैं। यहाँ तक कि घास काटनेकी भी मैशीनें वहाँ काम करती हैं। घासकी वहाँ बहुत अधिकता है। अकेले उसकी बिक्रीसे वहाँवालोंको करोड़ों रुपये की आमदनी होती है। उसके गट्ठे बाँधकर बाहर भेजे जाते हैं।

भारतके शिक्षित जनोंको देखना चाहिये कि कृषिका व्यवसाय कितना लाभदायक है। अनेक कारणोंसे जिनमेंसे कुछका उल्लेख ऊपर हो चुका है, यहाँ अमेरिकाकी जैसी खेती नहीं हो

सकती। तथापि जो लोग साधन-सम्पन्न हैं और जिनके पास जमीन है उन्हें दूसरोंकी गुलामी न करके, नये ढङ्गसे खेती करना चाहिये। जबतक पढ़े लिखे भारतवासी इस ओर ध्यान न देंगे या कृषक-मण्डलीमें कृषि-विषयक शिक्षाका प्रचार न होगा तब-तक इस देशका दारिद्रय भी दूर न होगा। कृषि और उद्योग-धन्धोंहीकी बदौलत देश समृद्ध होते हैं, इस बातको न भूलना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि कीमती कलें खरीद करनेके लिये रुपया दरकार होता है। वह यहाँके निर्धन कृषकों के पास नहीं। पर सधन और सामर्थ्यवान् जनोंके पास तो है। वही क्यों न इस कामको अपने ऊपर लेकर दूसरोंके लिये आदर्श बनें? अमेरिकामें भी सभी कृषक सब तरहकी मैशीनें नहीं रखते। वे सहयोगसे काम लेते हैं। किरायेपर भी वे मैशीनें लाते हैं—उसी तरह जैसे यहाँ गन्ना पेरनेकी मैशीनें छोटे छोटे कृषक भी किरायेपर लाते हैं। अपने देशमें पंजाबके परलोकवासी सर गंगारामके कामको देखिये उन्नत कृषिकी बदौलत ही उन्होंने लाखों रुपया पैदा किया और लाखों खैरात कर गये।

[दिसम्बर १९२७]

१५

लीग आफ़ नेशन्सका खून और भारत

सन् १८५७ के ग़दरकी याद कीजिये। उसमें बड़ी-बड़ी नृशंसताएं हुई थीं। कितने ही क़त्ल-आम भी शायद हुए थे। पर उन सबका सविस्तर और सच्चा वर्णन कहीं नहीं मिलता। लोगोंका कहना है कि ग़दरके इतिहाससे पूर्ण जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें कुछ नृशंस बातें बढ़ाकर लिखी गयी हैं और कुछपर धूल डाली गयी है। कलकत्तेके ब्लैकहोल और कानपुरके क़त्लकी कथा तो खूब विस्तारके साथ और, शायद बढ़ाकर भी लिखी गयी है। पर गोरोंने कालोंपर जो अत्याचार किये हैं उनपर कम प्रकाश डाला गया है और कुछ घटनाओंपर तो बिलकुल कहा ही नहीं गया। अब कोई साठ-सत्तर वर्ष बाद एडवर्ड टामसन (*Edward Thompson*) नामक एक अँगरेज़को उन पुरानी बातोंकी याद आयी है। उन्होंने अँगरेज़ीमें एक पुस्तक लिखकर संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के न्यूयार्क नगरसे प्रकाशित की है। उसका नाम है—*The Other Side of the Medal* इस पुस्तकमें उन्होंने गोरोंके उन क्रूर-कर्मोंका वर्णन किया है जो सिपाही-विद्रोहकी इतिहास-पुस्तकोंमें किसी कारणसे छूट गये हैं या छोड़ दिये गये हैं। यह बात हमें

"माडर्न-रिव्यू" में प्रकाशित उस पुस्तककी एक समालोचनासे ज्ञात हुई। इस समालोचनाहीको पढ़कर भारतवासी पाठकोंके रोंगटे खड़े हो सकते हैं, मूल-पुस्तक पढ़नेपर उनके हृदयोंकी क्या दशा हो सकती है, यह तो पढ़नेहीसे ज्ञात हो सकेगा।

नये जीते हुए देशोंके निवासियोंपर विजेता जाति, कभी-कभी भीषण अत्याचार कर बैठती है, यह तो इतिहास-प्रसिद्ध ही है। मिस्र, सीरिया, कांगो, रीफप्रान्त, बालकन-प्रदेश, कोरिया आदिके निवासियोंके साथ कैसे कैसे सलूक किये गये हैं, यह बात इतिहास-प्रेमियों और समाचार-पत्रोंके पाठकोंसे छिपी नहीं। योरपके कितने ही देश पशु-बलमें बहुत समयसे प्रबल हो रहे हैं। इसीसे उन्होंने अनेक अन्य निर्बल देशोंको जीतकर उनपर अपना प्रभुत्व जमाया है। इस प्रभुत्व-जमौव्वलके कारण उन्हें बहुधा वहाँके अधिवासियोंपर ज़ोरो-ज़ुल्म भी करना पड़ा है और अब भी करना पड़ता है। चीनमें इस समय क्या हो रहा है और बाक्सर-विद्रोहके समय क्या हुआ था, ये सब घटनाएं उसी पशुबल और आतङ्क-जमौव्वलके उदाहरण हैं। भारत भी इसका शिकार हो चुका है और किसी हद तक अब भी इसका शिकार हो रहा है।

परन्तु इस पशुबलसे बली योरपके कुछ देश, बहुत समयसे परस्पर भी लड़ने-भिड़नेकी ताकमें चले आ रहे हैं। कारण वही प्रभुत्वलिप्सा है। मेरा ही प्रभुत्व सबसे बढ़ा चढ़ा रहे; मैं ही अधिकाधिक निर्बलोंको पदानत करता चला जाऊँ; तू दूर रह; तू

मेरे काममें विघ्न न डाल—बात यह। योरपमें कुछ समय पूर्व जो महायुद्ध हुआ था उसका कारण भी यही लिप्सा थी। जर्मनी अपना बल बढ़ा रहा था। औरोंको यह बात पसन्द न थी। बस, सब प्रतिस्पर्धी अपना-अपना गुट बनाकर लड़ पड़े। जिनका पक्ष प्रबल था उन्होंने छल-बलसे किसी तरह जर्मनीको हरा दिया। पर उनकी इस जीतहीने उनके कान खड़े कर दिये। उन्होंने कहा, इस एक युद्धसे तो धन-जनकी इतनी हानि हुई है; और भी कोई ऐसा ही युद्ध छिड़ गया तो हमलोगोंका सर्वनाश ही हो जायगा—हमारे देश एकदम ही उद्ध्वस्त हो जायँगे। यह सोचकर उन्होंने लीग आफ नेशन्स नामकी एक संस्था बना डाली। उसे एक प्रकारकी शान्ति-स्थापक सभा या पञ्चायत कहना चाहिये। उसका सदर मुक़ाम स्विज़रलैंडके एक शहरमें क़रार दिया गया। वहाँ बड़े-बड़े दफ्तर खुल गये। सैकड़ों कर्म्मचारी रक्खे गये। बड़ी सभाके मातहत अनेक छोटी-छोटी कमिटियाँ भी बना डाली गयीं। इस सभाके अधिवेशन समय-समय-पर हुआ करते हैं। अन्तर्जातीय राजकीय विषयोंपर विचार होता है, नियम निर्धारित होते हैं और पारस्परिक झगड़े आपसहीमें निपटानेकी चेष्टा की जाती है।

अबतक जर्मनी इस सभाका सभासद् न था। अब वह भी हो गया है। जर्मनी, इंग्लेंड, फ्रांस, इटली और जापान ये पाँच बलाढ्य राज्य हैं। इनके प्रतिनिधियोंको इस सभामें स्थायी सभासदत्व प्राप्त है। अमेरिकाके भी कितने ही छोटे-

छोटे राज्योंके प्रतिनिधियोंको इसमें जगह मिली है। चीन, फारिस, तुर्की आदिके भी प्रतिनिधि इसमें शामिल हैं। पर बोलबाला बड़े राज्योंहीके प्रतिनिधियोंका है। अवशिष्ट राज्यों-को अस्थायी ही सभासदत्व प्राप्त है। सो भी कुछ-कुछ समय बाद। प्रतिनिधित्वके नियम इस खूबसूरती से बनाये गये हैं जिसमें काम पड़नेपर छोटे-छोटोंकी दाल न गले, बड़े अर्थात् बलाढ्य राज्य ही मनमानी कर सकें। सो शान्ति-स्थापनाकी चेष्टा करनेवालोंने यहां भी अपनी स्वार्थपरताका पूरा ख़याल रक्खा है। अतएव कहना चाहिये कि यह शान्ति-सभा केवल योरपके कुछ देशोंके हाथका खिलौना है। उन्हींने अपने मतलबकी सिद्धिके लिये इसकी सृष्टि की है। इसीसे अमेरिकाके संयुक्तराज्य इसमें शामिल नहीं हुए। इसमें आधिक्य और जोर जापान और योरपहीके कुछ देशोंका है। इसकी कुछ कारवाइ-योंसे नाराज होकर योरपके भी एक देश अर्थात् स्पेनने इसका साथ अभी हालहीमें छोड़ दिया है। इसके नियमोंमें एक नियम यह भी है कि यदि कोई देश किसी देश-विशेषपर अकारण ही, अथवा किसी क्षुद्र कारणसे आक्रमण करे तो शान्ति-सभा उसकी रक्षा करेगी। पर रीफोंके सरदार अब्दुलकरीमपर अभी उस दिन फ्रांस और स्पेनके तथा सीरियापर फ्रांसके जो आक्रमण हुए उनसे इस लीगने उन देशोंकी रक्षा तो दूर, उन आक्रमणोंके विषयमें विशेष चर्चा तक अपने अधिवेशनोंमें न की। इधर विदेशी राज्योंके विशेषाधिकारोंके कारण चीनमें जो उत्पात हो

रहे हैं उनपर भी इस सभाने टीका-टिप्पणी तक न की। कुछ देशोंको ऐसे आदेश मिले हैं कि अमुक-अमुक देशपर तुम तबतक प्रभुत्व जमाये रहो जबतक वे देश अपना राज्य आप करनेके योग्य न हो जायँ। ऐसे प्राप्ताधिकार देश (*Mandatory Powers*) कहाते हैं। अपने अधिकारमें लाये गये देशों व जातियोंपर ये लोग कभी-कभी बड़ी-बड़ी सख्तियां करते हैं। उस दिन इन लोगोंने अपने-अपने अधीन देशोंके सम्बन्धमें अपनी-अपनी रिपोर्टें सभामें पेश कीं। उनपर सभाने कुछ योंही सा एतराज़ किया और कुछ प्रश्न भी पूछे। इसपर इन अधिकारी देशोंने बड़ी नाराजगी ज़ाहिर की। बात यह कि हम जैसा चाहेंगे शासन करेंगे। पूछनेवाले तुम कौन ?

ऐसी ही इस सभामें भारतको भी अपने प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार प्राप्त है। पर इन प्रतिनिधियोंको भारतवासी नहीं चुनते। चुनती है ब्रिटिश गवर्नमेंट। इस दिल्लगीपर अनेक समझदार भारतवासियोंने अपनी प्रतिकूलता प्रकट की है। उनका कहना है कि इस सभाके खर्चका एक अंश जब भारत देता है तब अपना प्रतिनिधि वह आपही क्यों न चुने। सरकारका और भारतवासियोंका हित एक नहीं। इस दशामें खर्च तो भारतसे लेना और प्रतिनिधि अपने मनका चुनना, प्रतिनिधित्वकी अव-हेलनाके सिवा और कुछ नहीं। इस दफे इस सभाके अधिवेशन-में प्रतिनिधित्व करनेके लिये गवर्नमेंटने कपूरथलाके महाराजा साहबको भी भेजा था। उन्होंने वहाँ कुछ ऐसी बातें कहीं जिन्हें

भारतवासियोंके कितने ही नेताओंने बिलकुल ही पसन्द नहीं की। उधर विलायतमें महाराजा बर्दवानने भी भारतीय प्रतिनिधिकी हैसियतसे कुछ ऐसी बातें कह डालीं, जो उचित नहीं समझी गयीं।

तिसपर भी यहाँ इस देशमें कुछ लोग नक्कारा बजाते फिरते हैं कि इस सभासे बड़े-बड़े लाभ हैं। इसने भारतका प्रतिनिधि लेकर भारतका गौरव बढ़ा दिया है। सभामें भारतीय प्रतिनिधिको अन्य स्वतन्त्र देशोंके प्रतिनिधियोंके साथ बैठनेका अधिकार प्राप्त हो गया है— वग़ैरह-वग़ैरह। परन्तु पास बैठनेहीसे भारत उन अन्य देशोंकी बराबरीका नहीं हो जाता। उनकी और भारतकी स्थितिमें आकाश-पातालका अन्तर है। अफीमकी पैदावार और रफ्तनी तथा कल-कारखानेमें काम करनेवाले मजदूरोंके काम आदिके सम्बन्धमें नियम बना देनेहीसे भारतके हित-चिन्तनकी इतिश्री नहीं हो जाती। जिन बड़ी-बड़ी त्रुटियोंके कारण भारतवासियोंकी दुर्गति हो रही है उनकी तरफ तो इस सभा अर्थात् लीगका ध्यान ही नहीं। और यदि वह ध्यान भी देना चाहे तो नहीं दे सकती। कुछ बानक ही ऐसा बना दिया गया है। ऊपर लिखी गयी बातको न भूलिये कि यह लीग योरपके कुछ ही बलाढ्य देशोंके हाथका खिलौना है। उन्होंने कुछ बन्धन ही ऐसा बांध दिया है कि काम-काजके वक्त कसरत राय उन्हींकी रहे।

अच्छा, जिस लीगसे भारतका इतना हित होता है और

इतने कम हित होनेकी सम्भावना आगे भी है उसके लिये इस निर्धन देशको खर्च कितना करना पड़ता है। इस लीगके सालाना खर्चेका तखमीना हर साल तैयार किया जाता है। दिसम्बर १९२६ के "माडर्न-रिव्यू" में १९१६ के १२ महीनोंके खर्चका जो टोटल दिया गया है वह ९,१७, २२५ पौंड है। याद रखिये, इस मासिकपत्रके सम्पादक लीगके पिछले अधिवेशनमें खुद ही हाजिर हुए थे। अतएव उन्होंने यह टोटल लीगके कागज-पत्र देखकर ही दिया है, अपनी कोरी कल्पनासे नहीं दिया। ये इतने पौंड यदि १५) रुपया फी पौंडके हिसाबसे बताये जायँ तो १,३७,५८३७५, अर्थात् १ करोड़ ३७॥ लाख रुपयेसे भी अधिक हुए। यह इतना खर्च ९३७ अंशोंमें बाँटा जाता है। लीगमें शामिल देशोंकी आबादी, आमदनी और रकबे आदिको ध्यानमें रखकर हर देशके लिये अंश नियत किये जाते हैं। चुनांचे इँग्लैंड अर्थात् ग्रेट-ब्रिटेनके १०५ अंश नियत हुए हैं और बेचारे भुक्खड़ भारतके ५६ अंश। आपको यह बता देना चाहिये कि पहले भारतके इससे भी अधिक अंश थे। यह भी तो अभी कुछ ही समय से बहुत कुछ रोने-पीटनेसे हुई है। ऊपर जो १ करोड़ ३८४ लाखका टोटल दिया गया है उसे यदि ९३७ अंशोंमें बाटें तो हर अंशके हिस्सेमें कोई १४,६८८॥ रुपया आता है। उसे यदि भारतके ५६ अंशोंसे गुणा करें तो भारतके सालाना देनेका टोटल ८, २२, ३३२ रुपया होता है। यह कोई सवा आठ लाख रुपया प्रायः यों ही चला जाता है। इसके बदले

में यदि कुछ मिलता है तो केवल थोड़े से नियमों-उपनियमोंका बण्डल। जिस भारतके अधिकांश लोगोंको एक वक्त भी पेटभर भोजन मयस्सर नहीं होता, जहाँ निरक्षरताका अखण्ड साम्राज्य है, जहाँ दस दस, बीस-बीस कोस तक शफ़ाखानोंका नाम तक नहीं, वहाँका इतना रुपया इस लीगके ढकोसलेके लिये फूँका दिया जाय, इसपर किस साक्षर और सज्ञान भारतवासीको दुःख न होगा ?

इस लीग या शान्ति-सभामें सारी दुनियाके कोई ६० देश शामिल हैं। उनमेंसे छोटे ही छोटे अधिक हैं; बड़े-बड़े धुक्कड़ तो थोड़े ही हैं। अच्छा, अब देखिये, इन धुक्कड़ोंमेंसे कौन कितने अंश खर्च देता है—

नाम देश	...	...	अंश
ग्रेट-ब्रिटेन	...	...	१०५
फ्रांस	...	...	७९
इटली	...	...	६०
जापान	...	...	६०
भारत	...	...	५६
चीन	...	...	४६
कनाडा	...	...	३५
पोलेंड	...	...	३२
आस्ट्रेलिया	...	...	२७
ब्रेज़ील	...	...	२९

नाम देश	...	...	अंश
आयरलैंड	...	...	१६
नेदरलैंड्स	...	...	२३
रोमानिया	...	...	२२
सरबिया	...	...	२०
ज़ेकोस्लोवेकिया	...	...	२९

रूस और अमेरिकाके संयुक्तराज्य इसमें शामिल नहीं। जर्मनी अभी शामिल हुआ है। इससे उसका हिसाब नहीं दिया गया। अब आप देखिये कि पहलेके चार धुक्कड़ोंके साथ बेचारा भारत भी बांध दिया गया है। इतने बड़े चीनको भी उनसे कम ही खर्च देना पड़ता है, पर भारतको इटली और जापानके सदृश बलवान् राष्ट्रोंके प्रायः बराबर—कुछ यों ही कम—रुपया फूँकना पड़ता है। जर्मनीको भी अब शायद भारतसे अधिक खर्च न देना पड़ेगा। सो जो देश सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं और जिनकी बलवत्ताका आतङ्क सारे संसारमें छाया हुआ है उनके बराबर बैठनेका झूठा गौरव प्राप्त करके भारतके कङ्गाल कृषकोंका आठ लाखसे भी अधिक रुपया स्विट्ज़रलैंडके एक नगरको हर साल भेज दिया जाता है।

स्विट्ज़रलैंडमें लीगकी बड़ी-बड़ी इमारतें हैं। उनमें लीगके कितने ही दफ्तर हैं। इन दफ्तरोंमें बहुतसे अफसर और सैकड़ों कर्मचारी काम करते हैं। यह सवा करोड़से भी अधिक रुपया प्रायः इन्हींकी जेबोंमें जाता है। पर इन दफ्तरोंमें जह अन्यान्य

देशोंके निवासी सैकड़ों कर्मचारी काम करते हैं वहां गौरवकी गुरुतासे झुकी हुई पीठवाले भारतके सिर्फ ३ मनुष्य काम करते हैं। कुछ बड़े-बड़े देशोंके निवासी कर्मचारियोंकी संख्या नीचे दी जाती है—

देश	कर्मचारियोंकी संख्या
ग्रेटब्रिटेन	२२१
फ्रांस	१८०
इटली	३४
स्पेन	१०
पोलैंड	१२
बेलजियम	१८
आयरलैंड	१३
नेदरलैंड्स	१५
स्विटजरलैंड	२१०
जर्मनी	१०

स्विट्जरलैंडके २१० कर्मचारी देखकर कहीं यह न समझ जाइयेगा कि ये लोग बड़ी-बड़ी तनख्वाहें पाते होंगे, नहीं इनमेंसे अधिकांश दफ्तरी, चपरासी, जमादार, पोर्टर वगैरह ही हैं। कारण यह कि दफ्तर इन्हींके देशमें हैं। वहां चपरासी और कुली का काम करनेके लिये ग्रेटब्रिटेन और फ्रांससे अंग्रेज और फरासीसी जानेवाले नहीं। इसीसे वहींवालोंको ये सब पद दे डाले गये हैं। जो जर्मनी लीगके खर्चके लिये एक फूटी कौड़ी भी नहीं

देता रहा है उसने भी लीगके दफ्तरोंमें अपने १० कर्मचारी ठूंस दिये हैं। पर जो भारत ८ लाखसे भी अधिक हर साल देता है उसके सिर्फ तीन ही कर्मचारी वहां प्रवेश कर पाये हैं। यह न समझियेगा कि फ्रेंच-भाषा न जाननेके कारण अधिक भारतवासी नहीं लिये गये। ढूंढ़नेसे कोड़ियों भारतवासी ऐसे मिल सकते हैं जो अंगरेजी और फ्रेंच दोनों भाषाएं बखूबी जानते होंगे।

[फरवरी १९२७]

१६

देशी ओषधियोंकी परीक्षा और निर्माण

कुछ रोग ऐसे हैं जो देश-विशेषोंहीमें अधिक होते हैं। गर्मी और सर्दी, नमी और रूक्षता तथा आबोहवा और स्थितिका बहुत कुछ प्रभाव मनुष्य-शरीरपर पड़ता है। जो देश बहुत सर्द हैं वहां कुछ रोग ऐसे होते हैं जो गरम देशोंमें नहीं पाये जाते। इसी तरह गरम देशोंके कुछ रोग सर्द देशोंमें नहीं होते। इङ्गलैंडमें सर्दी अधिक रहती है। वहांवाले सर्द देशके निवासी हैं। पर उन लोगोंने अपना अधिकार ऐसे भी देशोंपर जमा लिया है जो बहुत गरम हैं। ऐसे गरम देशोंको भी उन्हें जाना और वहां रहना पड़ता है। वहांके कुछ विशेष प्रकारके रोगोंसे पीड़ित होनेपर विलायती डाक्टरोंसे कुछ भी करते-धरते नहीं बनता। क्योंकि उन रोगोंके कारण, निदान, लक्षण और चिकित्सासे वे अनभिज्ञ होते हैं। इस त्रुटिको दूर करनेके लिये उन्होंने कहीं कहीं विशेष प्रकारके डाक्टरी कालेज और स्कूल खोले हैं। वहां गरम देशोंके रोगोंके कारण आदिकी जांच भी होती है और उनकी चिकित्सा-विधि भी सिखाई जाती है।

इस तरहका एक स्कूल कलकत्तेमें भी है। उसीके साथ एक परीक्षागार भी है। स्कूलमें उष्ण-देश-जात श्वेत कुष्ठ, काला-

अजार, बेरीबेरी आदि-रोगोंका कारण, निदान और चिकित्सा भी सिखाई जाती है और परीक्षागारमें नयी-नयी ओषधियोंके रोगनाशक गुणोंकी परीक्षा भी होती है। यहां रोगियोंको रखने और उनका इलाज करनेके लिये एक अस्पताल भी है। इस स्कूल-परीक्षागार, ओषधि-निर्माणशाला और अस्पतालकी संस्थापना हुए अभी कुछ ही समय हुआ। स्कूलमें अन्य विषयोंकी शिक्षाके सिवा सफाई और तन्दुरुस्तीसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंकी भी शिक्षा दी जाती है, और यह शिक्षा सुनते हैं, उस शिक्षासे किसी तरह कम नहीं जिसकी प्राप्तिके लिये लोग स्वयं विलायत जाते हैं अथवा गवर्नमेंटके द्वारा या उसकी आज्ञासे भेजे जाते हैं।

इस स्कूलका नाम है स्कूल आव् ट्रापिकल डिजीजेज (*School of Tropical Diseases*) इसमें स्वदेशी ओषधियोंकी भी परीक्षा होती है और वे तैयार भी की जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि स्कूलका कम-से-कम यह विभाग, इस देशकी हित दृष्टिसे बड़े महत्वका है। परन्तु इसकी स्थापना या संचालनामें सहायता करनेका श्रेय न तो हमारे वैद्यराजोंको है, न हकीम साहबोंको, और न यहांके धनवान लक्ष्मीपतियोंहीको। इसके संस्थापक अंगरेज ही हैं। वे और अंगरेजी गवर्नमेंट ही इसका अधिकांश खर्च चलाती है। इसे सर लिओनार्ड राजर्सने खोला है। इसकी इमारतमें १४॥ लाख रुपया खर्च हुआ है। इसके परीक्षागारमें तीन विद्वान् खोजका काम करते हैं। उनकी और उनके सहायक कर्मचारियोंकी तनख्वाह और दूसरे खर्च वे अंगरेज देते हैं जो

जूट, चाय और खानोंका व्यवसाय करते हैं। कुछ सहायता गवर्नमेंट आव् इण्डिया भी देती है। स्कूलमें जितने प्रोफेसर (अध्यापक) और अन्य कर्मचारी हैं उनके खर्चका अधिकांश बङ्गालकी गवर्नमेंट अपने खजानेसे देती है। इसके सिवा इस स्कूलमें कुछ विद्वान् छात्र ऐसे भी रहते हैं जो भिन्न भिन्न विषयोंकी खोज और जांच करते हैं। उन्हें छात्रवृत्तियां मिलती हैं। महाराजा दरभङ्गा और मित्र नामके एक महाशयकी धर्मपत्नीके द्वारा भी दो छात्रवृत्तियां दी जाती हैं। डेविड यूल नामके एक धनी अंगरेज भी इसकी सहायता करते हैं।

अभी हालमें इस स्कूलकी वार्षिक रिपोर्ट निकली है। उसका सम्बन्ध १९२२ ईसवीसे है। उसके पाठसे सूचित होता है कि यह स्कूल अपना काम सफलतापूर्वक कर रहा है। शिक्षाके साथ ही साथ खोजका काम भी होता है। उष्णदेशोंमें होनेवाले रोगोंके सम्बन्धकी शिक्षा पानेवाले २८ छात्रोंमें, रिपोर्टके साल १९ छात्र पास हुए। सफाई और तन्दुरुस्तीसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंकी शिक्षा प्राप्त करनेकी ओर लोगोंका कम ध्यान है। इसीसे इस स्कूलमें इस श्रेणीके छात्र बहुत कम भरती हुए हैं। पर इन विषयोंकी जो शिक्षा यहां दी जाती है वह बहुत उच्च है और विलायतमें दी जानेवाली शिक्षासे किसी तरह कम नहीं। जो लोग इस शिक्षामें "पास" होते हैं उनको डी० पी० एच० (*D. P. H.*) की पदवी मिलती है।

अब इसमें एक अजायबघर खोलनेकी भी तजवीज हो रही

है। उसमें वे सभी चीजें रक्खी जायंगी जिनका सम्बन्ध उष्ण देशमें होनेवाले रोगोंसे है।

इस स्कूलकी प्रस्तुत रिपोर्टमें इसके एक बड़े ही महत्त्वशाली विभागकी कुछ बातोंका उल्लेख है। उस विभागका नाम है, फरमाकोलाजी (*Pharmacology*) अर्थात् ओषधि-निर्माण-विद्या। और-और विभागोंकी तरह इस विभागका भी एक परीक्षागार (*Laboratory*) जुदा है। पर और विभागोंके परीक्षागारोंमें यह परीक्षागार अधिक महत्त्व रखता है। इसमें सभी तरहके आवश्यक यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हैं। इसके प्रधानाधिकारी हैं मेजर चोपड़ा। आप पंजाबी मालूम होते हैं। डाक्टरीकी उच्च शिक्षा पाने और उच्चपदस्थ होनेपर भी आपमें स्वदेश-प्रेमकी मात्रा बहुत काफी मात्रामें विद्यमान जान पड़ती है। डाक्टरी विद्यामें निपुण होनेपर भी आप स्वदेशी ओषधियोंके निर्माण और प्रचारके बड़े पक्षपाती हैं। इस देशकी ओषधियोंके गुण-दोषोंकी जाँच करनेके लिये गवर्नमेंटने जो कमिटी बनाई थी उसके एक मेम्बर आप भी थे। उस कमिटीके मेम्बरकी हैसियतसे आपने बहुत काम किया है और अनेक स्वदेशी ओषधियोंके रोग-नाशक गुणोंको आपने क़बूल किया है। इस कमिटीने अपनी रिपोर्टमें लिखा है कि वैद्यक और यूनानी चिकित्सा अवैज्ञानिक नहीं। अतः गवर्नमेंटको चाहिये कि वह इन चिकित्साओंको भी दाद दे।

स्कूलमें जो काम मेजर चोपड़ाके सिपुर्द है उसे तो आप

करते ही हैं। साथही आप इस देशकी जड़ी-बूटियोंकी परीक्षा भी वैज्ञानिक ढंगसे करते हैं। जाँच करनेपर जो गुण जिस ओषधिमें आप पाते हैं उसमें रोग विशेषको नाश करनेकी कितनी शक्ति है, इसकी जाँच भी आप स्कूलके अस्पतालके रोगियोंपर करते हैं। पुनर्नवा नामकी ओषधिकी जाँच आपने बड़े मनो-निवेशसे की है और उसमें क्या-क्या गुण हैं, अर्थात् किन-किन रोगोंमें उसे देनेसे लाभ होता है, इसका भी प्रामाणिक विवरण प्रकाशित किया है। उनकी इच्छा है कि एक स्कूल अलग खोला जाय। उसमें छात्रोंको ओषधि-निर्म्माण-विद्याकी भी शिक्षा दी जाय और प्रत्येक स्वदेशी ओषधिकी जाँच करके उसके रोग-नाशक गुणोंका वर्णन लिखा जाय। फिर ये ओषधियां काफी मात्रामें तैयार करके सरकारी शफाखानोंको दी जायँ। वहां उनका उपयोग उन ओषधियोंके बदलेमें किया जाय, जो दूसरे देशोंसे यहाँ आती हैं। देखिये, कैसा स्तुत्य विचार है।

आज-कल यह हाल है कि कुचिला, सींगिया, मदार, अरण्डी, जामुनकी मींगी आदि कौड़ी मोल बिकती और विदेशको जाती हैं। वहाँ उनसे नाना प्रकारकी ओषधियाँ, तैल इत्यादि तैयार होकर जब वे चीजें इस देशको लौट आती हैं तब सैकड़ों गुने अधिक मूल्यपर बिकती हैं। यदि ये सब ओषधियाँ बटी, चूर्ण, स्वरस, कल्क, तेल आदिके रूपमें यहीं तैयार होने लगें और वैज्ञानिक ढंगसे इनके गुणोंका पता लगाकर उनके वर्णन प्रका-शित हो जायँ तो डाक्टरोंको विश्वास हो जाय कि ये चीजें काम-

की हैं। अतएव इनका प्रचार बढ़े और देशको करोड़ों रुपयेका लाभ हो। परन्तु यह काम इतना बड़ा है कि वर्तमान स्थितिमें अकेले डाक्टर चोपड़ा नहीं कर सकते। उन्हें कितनेही सहायक डाक्टर और कर्म्मचारी चाहिये। इसके लिये धन भी बहुत-सा चाहिये। स्वदेशी चिकित्साके पक्षपातियोंमें जो लोग धनी हैं और देश-भक्त भी हैं उन्हें चाहिये कि इस देशोपयोगी काममें डाक्टर-साहबकी सहायता करें।

एशियाटिक सोसायटी आव् बेङ्गालकी एक शाखा है। उसमें रोग-चिकित्सा विषयक बातोंपर विचार किया जाता है। कुछ समय हुआ, सोसायटीकी इस शाखाके सभ्योंकी एक बैठक हुई थी। उसमें स्वदेशी-ओषधि-निर्म्माणपर एक लेख पढ़ा गया था। इस लेखके लेखक हैं वे ही पूर्वनिर्दिष्ट मेजर चोपड़ा, एल० एम० एस० और डाक्टर बी० एन० घोष। पढ़े जानेके बाद यह लेख अँगरेजीकी एक सामयिक पुस्तक (*Indian Medical Record*) में प्रकाशित हुआ है। इस लेखमें लेखक-द्वयने अपने पूर्वोक्त विचारोंको विस्तार-पूर्वक प्रकट किया है। लेखके मुख्य-मुख्य अंशोंका सार नीचे दिया जाता है—

देशी ओषधियोंमें बहुत-सी ओषधियाँ ऐसी हैं जिनका प्रयोग वैद्य और हकीम सैकड़ों वर्षोंसे कर रहे हैं और वे अपना गुण भी खूब दिखाती हैं। पर कुछ ओषधियाँ ऐसी भी हैं जिनके गुणोंका वर्णन पुस्तकोंहीमें पाया जाता है। उनके गुणोंकी परीक्षा उचित रीतिसे आजतक किसीने नहीं की। इस दशामें समझ-

दार चिकित्सक उनके उन निर्दिष्ट गुणोंपर विश्वास नहीं करते। एक उदाहरण लीजिये। चिकित्सा-ग्रन्थोंमें लिखा है कि अशोकसे प्रदररोग, पुनर्नवासे जलोदर और अभ्रक-भस्मसे बहुमूत्र-रोग जाता रहता है। परन्तु ऐसे कथनको डाक्टर नहीं मान सकते, क्योंकि उनके शास्त्रमें जलोदर आदि मुख्य रोग नहीं माने गये; वे तो अन्य रोगोंके चिह्न या लक्षणमात्र माने गये हैं। इस दशामें जबतक यह बात वैज्ञानिक रीतिसे नहीं प्रमाणित की जाती कि हृदय, गुर्दे, यकृत आदिपर इन ओषधियोंका क्या असर पड़ता है तबतक विज्ञा-वेत्ता डाक्टर इनके गुणोंके विषय में किये गये दावेको भ्रान्तिरहित नहीं समझ सकते। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन वैद्यों और हकीमोंके दावे सही नहीं। हम तो केवल इतना ही कहते हैं कि बिना जाँच और तजरुबेके हम किसीके कथन-मात्रपर पूरा विश्वास नहीं कर सकते। विश्वास जमानेके लिये प्रमाण दरकार होता है। वह प्रमाण आप डाक्टरोंको दीजिये। तभी वे इन ओषधियोंके पूर्वोक्त गुणोंके कायल हो सकते हैं।

तिब्बी और वैद्यक चिकित्साके प्राचीन ग्रन्थोंमें जिन ओषधियोंकी योजना लिखी है, बहुत सम्भव है, उनकी जाँच योग्यतापूर्वक की गयी हो और उनका यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करके तब उनके रोग नाशक गुणोंका निश्चय किया गया हो; क्योंकि प्राचीन वैद्य और हकीम वैज्ञानिक जाँच भी करते थे। पर क्या यह बात सभी ओषधियोंके विषयमें कही जा सकती है? नहीं,

बात ऐसी नहीं। आज-कल तो देशमें जितनी जड़ी-बूटियाँ पायी जाती हैं प्रायः सभीमें किसी-न-किसी रोगनाशके गुण बताये जाते हैं। इस तरहकी ख्यातिका कारण जनश्रुतिके सिवा और कुछ नहीं। किसीने कोई-जड़ी बूटी देकर किसी रोगीका कोई रोग दूर कर दिया। बस उसने यह समझ लिया कि वह बूटी उस रोगकी रामबाण ओषधि है। वह इस बातकी जाँच नहीं करता कि उसमें ऐसा कौन-सा तत्त्व है जिसके कारण उसने उसमें उस रोगके नाशकी शक्ति विद्यमान मान ली। नये-नये ग्रन्थकारों और टीकाकारोंने इस तरहकी सैकड़ों ओषधियोंका उल्लेख अपने अनुभवके बलपर किया है। उनके उसी उतने अनुभवकी बदौलत लोग आजतक केवल सुनी-सुनायी बातोंपर विश्वास करके अनेक ओषधियोंमें अनेक रोग-नाशक गुणोंकी कल्पना करते चले आ रहे हैं। तथापि वे यह नहीं बतला सकते कि क्यों—किस आधारपर—उन्होंने उन रोगोंको दूर करनेकी शक्ति उन ओषधियोंमें मान ली है। इस तरहकी कच्ची कल्पनासे वे डाक्टरोंको क़ायल नहीं कर सकते। और जबतक वे ऐसा नहीं कर सकते तबतक वे यह आशा भी नहीं कर सकते कि सुशिक्षित डाक्टर और सरकारी दवाखाने, केवल उनके कथनपर विश्वास करके तिब्बी और आयुर्वेदिक दवाएँ काममें लावेंगे। उन्हें आप अपनी दवाओंके गुणोंके वैज्ञानिक प्रमाण दीजिये। फिर देखिये, वे उनका प्रयोग करते हैं या नहीं।

खुशीकी बात है, आजतक अनेक शिक्षा-प्राप्त डाक्टरों और

विज्ञानवेत्ताओंने स्वदेशी ओषधियोंके विषयमें बहुत-कुछ जाँच-पड़ताल की है और कितनी ही पुस्तकें और लेख भी लिख डाले हैं। आजसे सौ सवा सौ वर्ष पूर्व सर विलियम्स जोन्सने इस कामका सूत्रपात किया था। उन्होंने कुछ पौधोंपर एक पुस्तक लिखी है। उनके बाद १८१३ ईसवीमें जान फ्लेमिंगने एक बड़ी-सी सूची प्रकाशित की। उसमें उन्होंने उन पौधोंका वर्णन किया जो दवाके काम आते हैं। तदनन्तर शागनेशी, मुहीउद्दीन शेरिफ, डेविड हूपर और डाइमक आदिने भी कई पुस्तकें इस विषयकी लिखकर प्रकाशित कीं। इन पुस्तकोंमें आयुर्वेदिक और तिब्बी ग्रन्थोंके आधारपर जड़ी बूटियोंका वर्णन ही नहीं, किन्तु इनमें लेखकोंने अपने अनुभवों और परीक्षाओंका भी वर्णन किया है। इसके सिवा कुछ लोगोंने ओषधीय लताओं, पौधों और बूटियोंकी परीक्षा, रसायन-शास्त्रमें निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार भी करके उस परीक्षाका फल प्रकट किया। अभी हालहीमें गवर्नमेंटकी आज्ञासे जिस कमिटीने इस विषयमें जांच-पड़ताल की थी उसने तो बड़े ही महत्त्वकी सामग्री एकत्र कर दी है। अतएव अबतक इस सम्बन्धमें जो काम हो चुका है उससे भविष्यतमें बहुत सहायता मिल सकती है।

तथापि देशी ओषधियोंके गुण-धर्म्मका पता लगानेके लिये अभी बहुत समय, बहुत धन और बहुत बड़े आयोजनकी आवश्यकता है। पहले तो एक ऐसे परीक्षागारकी आवश्यकता है जिसमें सब तरहके शस्त्र, यन्त्र और अन्यान्य सामग्रियाँ हों। फिर इस

इतने बड़े कामके लिये और कर्मचारियोंके सिवा अनेक रसायन-शास्त्रियोंको भी आवश्यकता है; क्योंकि ओषधियोंके गुण धर्म्म-की परीक्षा रसायन-शास्त्रके ज्ञाताओंके बिना हो ही नहीं सकती। पद-पदपर उनकी आवश्यकता पड़ती है। ओषधि-निर्माणके कामके लिये और देशोंमें जैसे कारखाने और परीक्षागार हैं वैसे ही जबतक इस देशमें न खोले जायँगे और अनेक रसायन-वेत्ता उसमें योग न देंगे तबतक हम अपने काममें कदापि सफल-मनोरथ न होंगे। अभी तो कलकत्तेके स्कूलसे सम्बद्ध परीक्षागारमें मेजर चोपड़ाकी सहायताके लिये केवल एक ही रसायन-शास्त्री हैं। इस दशामें ओषधि-सम्बन्धी काम नाम लेने योग्य भला कैसे हो सकता है।

किसी ओषधिकी परिक्षाके लिये पहले इस बातका पता लगानेकी जरूरत है कि उसमें कौन-कौनसे रासायनिक द्रव्य हैं। यह बात अच्छे-अच्छे यन्त्रों और परीक्षाओंसे ही सम्भव है। यह काम सुदक्ष रसायनज्ञ ही कर सकता है। विश्लेषण और पृथक्करण द्वारा द्रव्योंका पता लग जानेपर उनके प्रयोगकी परीक्षा आवश्यक होती है। किस रोगमें वह कितना काम दे सकती है, इसकी जाँचके लिये बहुत समय, योग्यता और धैर्य्यकी जरूरत होती है।

तीन मुख्य अभिप्रायोंको ध्यानमें रखकर देशी ओषधियोंकी परीक्षा और प्रयोगकी आवश्यकता है, यथा—

(१) परीक्षा और प्रयोगके द्वारा इतनी ओषधियाँ निश्चित

कर लेना चाहिये जिससे इस देशको उनके लिये और देशोंका मुंह न ताकना पड़े। फिर उन ओषधियोंको व्यावसायिक ढंगपर खिलाने और पिलाने लायक बना लेना चाहिये।

(२) वैद्य और हकीम जिन रोगोंमें जो ओषधियाँ देते हैं उनकी जाँच करके यह निश्चय कर लेना चाहिये कि उनमेंसे कौन-कौन ओषधि गुणकारी है और किसके विषयमें वैद्यों तथा हकीमोंका दावा ठीक नहीं। फिर जो ओषधियाँ परीक्षामें पूरी उतरें, उनका प्रचार पश्चिमी देशोंके डाक्टरों-द्वारा किये जानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(३) ओषधियाँ इस तरह तैयार की जायँ कि लागत कम पड़े। सस्ती होने हीसे सब लोग उन्हें मोल ले सकेंगे और अधिक आदमियोंको उनसे फायदा पहुँच सकेगा।

सैकड़ों जड़ी-बूटियाँ यहाँ ऐसी उत्पन्न होती हैं जिनके गुण-धर्म्मोंसे पूर्वी और पश्चिमी देशोंके डाक्टर अच्छी तरह परिचित हैं। उनमेंसे कुछ विदेशोंको भेजी जाती हैं। वहाँसे उनकी दवाएँ तैयार होकर जब यहाँ आती हैं तब एक पैसेकी चीज़के डेढ़ दो रुपये देने पड़ते हैं। यदि ये सब ओषधियाँ यहीं तैयार की जायँ तो लाखों रुपये देशहीमें रहें और हजारों आदमियोंकी जीविकाका द्वार खुल जाय। फिर सैकड़ों जड़ी-बूटियाँ यहाँ जगह-की-जगह सूख जाती हैं, कोई उन्हें पूछता भी नहीं। इस तरह देशका अनन्त धन योंही नष्ट हो जाता है। कुछ जड़ी-बूटियों और पौधोंकी उत्पत्तिका उल्लेख, उदाहरणके तौरपर,

नीचे दिया जाता है—

शिमलासे काश्मीर तक हिमालय पर्वतपर अङ्गूरशफा उत्पन्न होता है। खुरासानी अजवान भी हिमालयपर होती है। इस देशके उष्ण प्रदेशोंमें इतना कुचला पैदा होता है जिसकी सीमा नहीं। यह कुचला बड़े काम आता है। कोई दवाखाना ऐसा न होगा जहाँ इससे बनी हुई ओषधियाँ न काममें लायी जाती हों। धतूरा तो सभी कहीं पाया जाता है। मालती सिन्धमें और पेशावरके आस-पास इन्द्रायण सीमाप्रान्त और पञ्जाबमें, और जङ्गली प्याज़ तो सभी कहीं अधिकतासे उगती है। इसी तरह और भी अनन्त ओषधियाँ ऐसी हैं जो जङ्गलों, पहाड़ों, घाटियों और तराइयोंमें गाड़ियों पैदा होती और अकारण ही नष्ट जाती हैं। इन सबकी परीक्षा होनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि किस मौसममें और कहाँकी कौन चीज़ एकत्र करनेसे उसके रासायनिक गुण कम नहीं होते। दूसरे देशोंमें उत्पन्न इन जड़ी-बूटियोंकी तुलना अपने देशकी जड़ी-बूटियोंसे करनी चाहिये और यह देखना चाहिये कि अपनी देशज ओषधियोंमें यदि कुछ कमी है तो उसकी पूर्ति किस तरह हो सकती है। किसी विशेष आबोहवा, मौसम और भूमिमें उत्पन्न करनेसे इन बूटियोंके गुणधर्मकी कमी यदि दूर हो सकती हो तो जाँच और तजरुबेसे उसे दूर कर देना चाहिये।

कुछ ओषधियाँ विदेशसे ऐसी भी आती हैं जो इस देशमें नहीं पायी जातीं। पर उनसे मिलती-जुलती और ओषधियाँ-

जरूर पायी जाती हैं। जाँच करनेवालोंको रासायनिक प्रक्रिया द्वारा अपनी ओषधियोंके गुण-धर्मका पता लगाना चाहिये और रसायन-शास्त्रके आधारपर यह निश्चय करना चाहिये कि अमुक ओषधिमें अमुक तत्त्व हैं। विश्लेषण करके उनकी मात्राका निर्देश कर देना चाहिये। यदि वैसी ही ओषधियाँ अन्य देशोंसे यहाँ आती हों तो उनकी जगह अपनी देशज ओषधियोंके प्रयोगकी सिफारिश करनी चाहिये। वैज्ञानिक प्रणालीसे गुण-धर्मका निश्चय हो जानेपर डाक्टर लोग झख मारकर उनका प्रयोग करेंगे, क्योंकि वे सस्ती पड़ेंगी। जान-बूझ कर कोई अपना रुपया क्यों व्यर्थ बरबाद करेगा? विदेशी दवा जालप (*Jalap*) में जो गुण हैं, वही प्रायः कालादानामें हैं। जो बात भार्ङ्गीमें है वही क्वासिया (*Quassia*) में। चीन और जापानसे जो पेपरमिंट तेल आता है वही यहाँके पुदीनेसे तैयार किया जा सकता है। परन्तु जबतक वैज्ञानिक ढंगसे इन ओषधियोंके गुण-धर्मका निश्चय करके यह न सिद्ध किया जायगा कि इनके प्रयोगसे वही काम होगा जो विदेशी ओषधियोंसे होता है तबतक विज्ञान और रसायन-विद्याके कायल डाक्टर किसीकी बात सिर्फ कह देनेहीसे कभी माननेवाले नहीं। इसीसे परीक्षागारमें अर्वाचीन यन्त्रोंकी सहायतासे इनके परीक्षण, पृथक्करण और गुण-धर्मनिरूपणकी आवश्यकता है। मद्रासके डाक्टर कोमनने बबरी, पुनर्नवा, सेमल, कुचीं आदि कितनी ही देशज ओषधियोंमें कुछ विशेष रोगोंको दूर करनेके गुण बताये हैं।

परन्तु इस तरह उनका सिर्फ बता देना काफी नहीं। रसायन-शास्त्रके नियमोंसे उनमें उन गुणोंका होना डाक्टरोंके गले उतार देना पड़ेगा। तभी वे इस कथनपर विश्वास करेंगे, अन्यथा नहीं।

जितने डाक्टरी दवाखाने हैं और जितने सरकारी अस्पताल हैं सभीमें विलायती ही दवाएँ मिलती और दी जाती हैं। वे बहुत महँगी पड़ती है। निजके तौरपर डाक्टरी-पेशा करनेवाले लोग तो दवाओंके दाममें दूकानका किराया, नौकरोंकी तनख्वाह, रोशनी वग़ैरहका खर्च और अपना मुनाफा जोड़कर उनको और भी महँगा कर देते हैं। उनसे सिर्फ वे ही रोगी फायदा उठा सकते हैं जिनके पास चार पैसे हैं। रहे, खैराती अस्पताल, सो उनको दवाओंके लिये सालाना एक निश्चित रकम मिलती है। उसीके भीतर जो दवाएँ वे चाहें मँगा सकते हैं, अधिक नहीं। नतीजा यह होता है कि रोज काममें आनेवाली बहुत ही साधारण दवाएँ भी—मसलन कुनैन, मैगनेशिया और अंडीका तेल भी कभी-कभी कम पड़ जाता है। कीमती दवाओंकी तो बात ही जुदा है। वे तो बहुतही कम नसीब होती हैं।

इस दशामें देशज जड़ी-बूटियोंसे इस ढंगसे औषधियां तैयार करना चाहिये जो सस्ती पड़ें। तभी अमीर-गरीब सभीको लाभ पहुँच सकेगा—तभी सब लोग उन्हें खरीद सकेंगे। भारतवर्षके सदृश बुभुक्षित और निर्धन देशके लिये कीमती दवाओंका होना न होना दोनों बराबर हैं। दवाएं सस्ती तभी हो सकती हैं जब वे अपने ही देशमें अपनी ही जड़ी-बूटियों और लता-पत्रादिसे

तैयार की जायँ और बहुत अधिक मात्रामें तैयारकी जायँ। अतएव हमें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि उपयोगी जड़ी-बूटियोंको समयपर एकत्र करें, जरूरत होनेपर अनाजकी फसलकी तरह उन्हें भी पैदा करें, फिर बड़े-बड़े कारखाने खोलकर उनके कल्क, स्वरस, चूर्ण और वटिकाएं आदि तैयार करके उन्हें सस्ते मूल्यपर बेचें। विदेशसे आनेवाली ओषधियोंके मुकाबलेमें यदि हमारे यहां वैसी ही औषधियां पायी जाती हों तो उनके गुण-धर्मोंका वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करके उनका विवरण प्रकाशित करना चाहिये। फिर व्यावसायिक ढङ्गपर उनका निर्माण करके विदेशी ओषधियोंके बदले उनके व्यवहारका प्रचार करना चाहिये। इसी तरह धीरे-धीरे सभी उपयोगी जड़ी-बूटियोंसे औषधियां प्रस्तुत करके विदेशी ओषधियोंका उपयोग बन्द कर देना चाहिये। देशहीमें दवाएं तैयार करनेसे विदेशियोंका मुनाफा, जहाज और रेलका खर्च और बहुत अधिक मजदूरी न देनी पड़ेगी। नतीजा यह होगा कि दवाएँ सस्ती पड़ेंगी, देशमें ओषधि-निर्माणका व्यवसाय बढ़ेगा और यहाँका लाखों रुपया यहीं रहेगा। अभी तो यह हाल है कि सैकड़ों मन कुचिला, धतूरा, सींगिया और अरण्डी के बीज इत्यादि योरप और अमेरिकाके व्यवसायी यहांसे कौड़ी मोल ले जाते हैं। हजारों कोस दूर-देशोंमें जाकर इन्हीं चीजोंसे बनी हुई ओषधियां जब फिर भारतको लौटती हैं तब उनके दाम कौड़ियोंके बदले मुहरोंमें देने पड़ते हैं।

इस विवेचनसे यह बात ध्यानमें आ जायगी कि देशहीमें

औषधि निर्माण होनेसे देशको कितना लाभ पहुँच सकता है। इसकी सिद्धिके लिये अनेक परीक्षागारों, अनेक रसायन-विशारदोंकी सहानुभूति और सहायता तथा बहुत धनकी आवश्यकता है। देशभक्तों, व्यवसायियों और धनवानोंका धर्म है कि वे इस ओर ध्यान दें और मेजर चोपड़ाके हृद्गत विचारोंको कार्य्यमें परिणत करनेकी चेष्टामें लगें।

[जुलाई १९२३]

१७

देहाती पञ्चायतें

पञ्चायतें इस देशकी बहुत पुरानी संस्थाएँ हैं—इतनी पुरानी जितनी कि शायद हमारे वेद भी न हों। एकत्र होकर मनुष्य जब एक ही जगह रहने लगते हैं तब, स्वभावके वैचित्र्य या भेद-भावके कारण, झगड़े-बखेड़े अवश्य ही होते हैं—सबल निर्बलको अवश्य ही कभी-कभी सताने लगते हैं। सभ्यताकी प्रारम्भिक अवस्थामें न तो कोई राजा ही होता है और न कोई न्यायालय ही होता है। अतएव आपसके झगड़ोंका फैसला यदि कोई कर सकता है तो बस्तीके प्रमुख मनुष्य ही कर सकते हैं। इसीसे विद्वानोंका कथन है कि पञ्चायतें भारतवर्षकी अत्यन्त प्राचीन संस्थाएँ हैं। उनका अस्तित्व अबतक लोप नहीं हुआ। अबतक भी प्राय: प्रत्येक गांवमें—हम अपने सूबेकी कहते हैं—कोई-न-कोई जगह ऐसी निश्चित रहती है जहां सबलोग आवश्यकतानुसार शामको एकत्र होते और आपनी झगड़ोंको आपसहीमें तै कर लेते हैं। इन पञ्चायतोंका बल यद्यपि उच्च-जातियोंमें घट गया है, तथापि नीच जातियोंमें इनका अबतक प्रचाराधिक्य है। वे लोग अपने सामाजिक ही नहीं, दीवानी और फौजदारीके भी मामले, बहुधा अपनीही पञ्चायतोंके सामने पेश करते हैं।

हमारे वर्तमान शासकोंकी राय है कि प्रतिनिधि-सत्ताक राज्यप्रणाली पश्चिमी देशोंकी उपज है। भारतके लिये वह अश्रुत पूर्व वस्तु है। उसका बीज यहाँकी अनुवर भूमिमें तबतक उगकर बड़ा नहीं हो सकता जबतक कि उनकी दी हुई शिक्षारूपी खादसे वह भूमि खूब उर्वरा न बना दी जाय। इसीसे वे लोग कुछ समयसे हमें इस राज्यप्रणालीका सबक सिखा रहे हैं। मालूम नहीं, कितनी शताब्दियों या कितने कल्पोंमें भारतवासी इसे सीखकर पञ्चायती राज्य क़ायम करने योग्य हो जायँगे।

शासकोंकी ये बातें कुछ भारतवर्षी विद्या-विशारदोंको बेतरह खटकी हैं और अबतक खटक रही हैं। वे इन्हें कपोल-कल्पना मात्र समझते हैं; क्योंकि इनकी दृष्टिमें जातीय पञ्चायतोंकी तो बात ही नहीं, यहाँ तो किसी समय बड़े बड़े प्रजातन्त्र राज्यतक क़ायम थे। इस बातके अनेक प्रमाण प्राचीन पुस्तकोंमें पाये जाते हैं। हाँ, उनका नाम प्रजातन्त्रके बदले गणतन्त्र था। पर नामभेद होनेहीसे उनका अभाव नहीं माना जा सकता। इन गणतन्त्र राज्योंके वर्णनोंसे बौद्ध-धर्मके अनुयायी लेखकोंके लिखे कितनेही ग्रन्थ अबतक मौजूद हैं। उनको भी आप जाने दीजिये। आप रामायण और महाभारतहीको लीजिये। उनमें भी आपको ऐसे कितनेही उदाहरण मिलेंगे जिनसे जन-समुदाय किंवा प्रजा-जनोंकी अबाध सत्ताका अस्तित्व सूचित होता है। गणतन्त्र या प्रजासत्ताक राज्य न होनेपर भी प्रजाकी प्रभुता यहाँ इस देशमें किसी समय इतनी प्रबल थी कि प्रजा दुराचारी नरेशोंको राज-

सनसे गिरा तक देती थी। किसी भी राजाको राजासन-प्राप्ति तभी हो सकती थी जब उसका अनुमोदन प्रजा करती थी। मतलब यह कि गण-तन्त्र-राज्योंहीमें नहीं, राजतन्त्र-राज्योंमें भी प्रजा ही राजोंको बना या बिगाड़ सकती थी।

परन्तु दैवयोगसे उन पुरानी प्रथाओं और पुरानी सत्ताओंको जब स्वयं भारतवासी ही भूल-सा गये हैं तब हमारे शासक उनके अस्तित्वका अस्वीकार करें तो कोई आश्चर्य्य नहीं। जहाँ हमलोगोंने अपने और कितने ही गुणोंका त्याग और विस्मरण कर दिया है तहाँ उनमेंसे यह भी एक है।

शासकों और उनके देशवासी पण्डितोंने जब यह कहना शुरू किया कि भारतमें कभी प्रजातन्त्र-प्रणाली प्रचलित न थी तब भारतवासी विद्वानोंने बड़े-बड़े लेख और पुस्तकें लिखकर उनकी इस कल्पनाका खण्डन किया और इस बातको सप्रमाण सिद्ध कर दिया कि किसी समय यहाँ बड़े-बड़े प्रजातंत्र-राज्य थे। स्वराज्य-सञ्चालनकी चर्चा तो बहुत पहलेहीसे हो रही थी। अब उसने और भी जोर पकड़ा। गवर्नमेण्टपर दबाव-पर-दबाव डाला गया कि अभी और कुछ नहीं करते तो पुरानी पञ्चायतोंकी जगह नयी पञ्चायतें ही कायम कर दो और उन्हें दीवानी, फौजदारी और सफाईके सम्बन्धके छोटे-छोटे मामले मुकद्दमे सुननेका अधिकार दे दो। बहुत समयतक इस सम्बन्धमें जद्दो-जेहद होनेपर गवर्नमेन्टका आसन थोड़ा-सा डिगा और उसने प्रजाके प्रतिनिधियोंकी बात मान ली। प्रायः सभी प्रान्तोंमें

सरकारी पञ्चायतें खोल दी गयीं। उनके अधिकार और सङ्गठन आदिके नियामक क़ानून भी बन गये। पर प्रत्येक प्रान्तका नियमन जुदा रहा। किसी प्रान्तकी पञ्चायतोंको कुछ कम अधिकार मिले, किसी प्रान्तकी पञ्चायतोंको कुछ अधिक। उनके सङ्गठन आदिमें भी कुछ-न-कुछ भिन्नता रही। शासकोंने इस तरहके प्रान्तिक क़ानून बनाकर गोया देहातियोंपर बड़ा एहसान किया और स्वराज्य-सञ्चालनका काम थोड़े पैमानेमें करना सीखनेके लिये गोया उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। एतदर्थ धन्यवाद। संयुक्त-प्रान्तके लेजिस्लेटिव कौंसिलने इस विषयका जो क़ानून बनाया है उसका नम्बर ६ है। वह सन् १९२० ईसवीमें बना था। अर्थात् उसे बने कोई सात-आठ वर्ष हुए। उसकी मुख्य-मुख्य बातोंका उल्लेख इस मतलबसे नीचे किया जाता है जिसमें जहाँ ऐसी पञ्चायतें न खुली हों वहाँवाले उन्हें खुलाकर अपना राज्य आप ही सञ्चालन करनेकी वर्णमाला सीखनेकी चेष्टा करें।

पञ्चायतोंका खोला जाना

जिस ज़िले या ज़िलेके जिस हिस्सेमें पञ्चायत ऐक्ट जारी कर दिया जाता है उसके किसी भी मौजेमें पंचायत खुल सकती है। अगर मौज़ा छोटा है तो पास-पड़ोसके कई मौजोंको मिलाकर पचायतका एक हलका मुक़र्रर कर दिया जाता है। पंचायतका दफ्तर किसी एक ही मौजेमें रहता है। वहीं सब पञ्च नियत समयपर उपस्थित होते और मामले-मुक़द्दमे करते हैं। पंचोंकी संख्या ५ से कम और ७ से ज्यादा नहीं होती। उन्हींमेंसे एक

आदमी सरपंच मुक़र्रर कर दिया जाता है। उसमें लिख-पढ़ सकनेकी योग्यताका होना आवश्यक है; क्योंकि पंचायतके रजिस्टरों वग़ैरहकी ख़ाना पूरी उसीको करनी पड़ती है।

पंचायत खोलनेकी इच्छा होनेपर मौजेके ख़ास-ख़ास बाशिन्दोंको जिलेके हाकिमको दरख़्वास्त देनी पड़ती है। हाकिम इस बातकी जाँच करता है कि पंचायत खोलनेकी ज़रूरत है या नहीं और काफ़ी तादादमें काम करने योग्य पंच मिल सकते हैं या नहीं। जाँचकी रिपोर्ट अनुकूल होनेपर कलेक्टर या डिपुटी-कमिश्नर पंच नामज़द कर देता है और उन्हींमेंसे एकको सर-पंच बना देता है। पंच और सरपञ्च मुक़र्रर और बरख़ास्त करनेका अधिकार उसीको है। और सब कार्रवाई हो चुकनेपर रजिस्टर, फारम, क़ानूनकी किताब वग़ैरह सामान पंचायतको भेज दिया जाता है और दिन मुक़र्रर हो जाते हैं कि हफ़्तेमें किस-किस दिन पंचायत बैठकर काम किया करेगी। बैठकके रोज़ काम तभी हो सकता है जब कम-से-कम ३ पंच (जिनमें सरपंचको भी शामिल समझिये) उपस्थित हों।

पञ्चायतोंके अधिकार

क़ानूनकी रू से पंचायतोंको दीवानी और फ़ौजदारी दोनों मदोंके कुछ अधिकार प्राप्त हैं। सफ़ाई और आवारा घूम-फिरकर नुक़सान पहुँचानेवाले मवेशियोंके सम्बन्धमें भी उन्हें कुछ अधिकार दिये गये हैं—

दीवानी

पञ्चायतें नीचे लिखी हुई दीवानीकी नालिशें सुन सकती हैं-

(१) क़ौलो-क़रारपर दिये गये नक़द रुपयेकी बाबत।

(२) जायदाद मनकूलाको दिलवानेकी बाबत।

(३) माल मनकूलाको नुक़सान पहुँचानेके मुआविज़ेकी बाबत।

शर्त यह है कि दावेकी मालियत २५) से ज़ियादह न हो।

फौजदारी

पञ्चायतोंको नीचे लिखे हुए फौजदारीके जुर्मोंके मुकद्दमे, और उनमेंसे किसी जुर्ममें मदद पहुँचाने या जुर्म करनेकी कोशिशके मुकद्दमे सुननेके अधिकार दिये गये हैं—

(क) ताज़ीरात हिन्दके अनुसार

	दफ़ा
(१) जान बूझकर चोट पहुँचाना।	३२३
(२) भड़काये जानेपर हमला करना।	३५८
(३) भड़काये बिना ही हमला करना।	३५२
(४) चोरी, यदि चुराये गये मालकी क़ीमत १०) से ज़ियादह न हो।	३७९
(५) नुक़सान पहुँचाना, यदि १०) से ज़ियादहका नुक़सान न हुआ हो।	४२६
(६) दङ्गे-फिसादकी नीयतसे किसीकी बेइज़्ज़ती (तौहीनी) करना।	५०४

नम्बर (४) जुर्मके सम्बन्धमें शर्त यह है कि पञ्चायत तभी मुकद्दमेकी समाप्त कर सकेगी जब चोर चोरी करते वक्त पकड़ा या पहचान लिया गया हो।

(ख) ऐक्ट मदाखिलत बेजा मवेशीके अनुसार

दफा

मदाखिलत बेजा करनेके कारण किसी पशुको यदि किसीने पकड़ा हो और कोई उसे जबरदस्ती छुड़ा ले या उसे पकड़नेमें रोके। २४

(ग) सफ़ाई और तन्दुरुस्तीके कानूनके अनुसार

ऐसे क़ायदोंके खिलाफ काम करना जो दफा १४ के अनुसार बनाये गये हों और जिनकी बाबत दफा १५ के अनुसार सजा दी जा सकती हो।

पञ्चायत किसी ऐसे जुर्मके सम्बन्धका मुक़द्दमा नहीं सुन सकती जिसमें मुक़द्दमा दायर करनेवाला या मुल्ज़िम ऐसा सरकारी मुलाज़िम हो जो उसी ज़िलेमें काम करता हो जहां पञ्चायत क़ायम है।

सजाएँ

ज़ियादह-से-ज़ियादह सजाएं जो पञ्चायत दे सकती हैं वे ये हैं—

(क) ताजीरात हिन्दके अनुसार

जुर्माना जो १०) से या जो नुक़सान या घाटा हुआ हो उसके दूनेसे अर्थात् उन दोनोंमेंसे जो रकम बड़ी हो उससे ज़ियादह न हो।

(ख) ऐक्ट मदाखिलत बेजा मवेशीके अनुसार

जुर्माना जो ५) से ज़ियादह न हो।

(ग) सफाई और तन्दुरुस्तीके कानूनके अनुसार

जुर्माना जो १) से ज़ियादह न हो।

कोई पञ्चायत असली सज़ाके तौरपर या जुर्माना अदा न करनेकी सूरतमें कैदकी सज़ाका हुक्म नहीं दे सकती। वह सफाई और तन्दुरुस्तीके कानूनके खिलाफ किये गये जुर्मोंकी समात भी तब तक नहीं कर सकती जबतक वह कानून उसके हलकेमें जारी न कर दिया जाय।

जुर्माना करते वक्त पञ्चायतको यह हुक्म देनेका अधिकार है कि कुल जुर्माना या उसका कुछ हिस्सा वसूल होनेपर नीचे लिखे हुए कामोंमे खर्च किया जाय—

(क) उस खर्चको पूरा करनेमें जो मुक़द्दमा दायर करनेवालेने उस मुकद्दमेमें मुनासिब तौरपर किया हो।

(ख) किसी ऐसे माली नुक़सान या घाटेकी बाबत मुआविज़ा देनेमें जो उस जुर्ममे हुआ हो जो किया गया है।

अगर पञ्चायतको मालूम हो जाय कि किसीने कोई झूठा मुकद्दमा दायर कर दिया है तो वह उससे ५) तक मुआविज़ा लेकर मुलज़िमको दिला सकती है।

दीवानीकी नालिशें और फौजदारीके मुक़द्दमें लेने और जुर्माना करनेकी बाबत जिन अधिकारोंका उल्लेख ऊपर हुआ है उससे

अधिक अधिकार भी खास खास पञ्चायतोंको दिये जा सकते हैं। शर्त यह है कि गवर्नमेंट इस बातकी मंजूरी पहिलेसे दे दे और बतला दे कि अमुक-अमुक पञ्चायतको ये अधिकार दिये जाते हैं।

अगर किसी नालिश या मुक़द्दमेमें पञ्चायतका कोई पञ्च फ़रीक़ हो या उससे निजका कुछ सम्बन्ध रखता हो तो वह उस नालिश या मुक़द्दमेकी कार्रवाईमें शरीक़ न हो सकेगा और किसी तरहकी राय (वोट) न दे सकेगा। मुक़द्दमों और नालिशोंका फ़ैसला कसरत-रायसे होता है। यदि विपक्ष और पक्षमें बराबर बराबर रायें हों तो सरपञ्चको एक और राय (अर्थात् क़तई राय—*Casting vote*) देनेका अधिकार है।

पञ्चायतोंमें जो नालिशें दायर की जाती हैं उनमें मुद्दईको पूरा दावा दाखिल करना पड़ता है। कल्पना कीजिये कि देवदत्तको शिवदत्तसे ५०) पाना है। अतएव वह उतनेका दावा नहीं दायर कर सकता। क्योंकि साधारण पञ्चायतोंको २५) से अधिककी नालिशें सुननेका अधिकार ही नहीं। अगर देवदत्त चाहे कि २५) का दावा आज करे और उसकी डिगरी हासिल कर लेनेपर, बाकीके २५) का दावा फिर कभी, तो वह यह नहीं कर सकता। हाँ अगर वह ५०) में से २५) छोड़ दे तो बाकीके २५) की नालिश वह कर सकता है। मतलब यह है कि जिसे पञ्चायतोंसे फ़ायदा उठाना हो और मुंसिफ़ी अदालतमें जाकर जेरबारी और खर्चसे बचना हो वह अपने दावेका कुछ हिस्सा छोड़कर २५) तककी नालिश कर सकता है। छोड़े हुए रुपयेका दावा फिर कभी किसी

भी अदालतमें नहीं दायर हो सकता।

दीवानीकी नालिश दायर करनेका हक़ पाप्त होनेके तीन वर्ष बाद तक ही दावे पञ्चायतोंमें किये जा सकते हैं। तीन वर्ष बीत जानेपर नालिश करनेका हक़ जाता रहता है।

नालिशें उसी हलकेकी पञ्चायतके सामने दायरकी जा सकती हैं जिसमें मुद्दआइलेह या यदि एकसे अधिक मुद्दआइलेह हों तो सब नालिश दायर करनेके वक्त रहते हों। इस बातका कुछ विचार नहीं किया जाता कि बिनाय दावा किस जगह पैदा हुई या मुद्दई कहांपर रहता है। इसी तरह फौजदारीके मुक़द्दमे उस हलकेकी पञ्चायतके सामने दायर किये जाते हैं जिसमें जुर्म किया गया हो।

बहुत दफे ऐसा होता है कि पञ्चोंसे अनबन होने या और किसी कारणसे लोग पंचायतोंके सामने फौजदारीके मुकद्दमे दायर न करके हाकिम तहसीलकी अदालतमें दायर कर देते हैं। ऐसी दशामें हाकिमको कानूनन यह अख़तियार हासिल है कि वह उस मुक़द्दमेको उसी पंचायतमें मुंतक़िल कर दे जिसमें कि उसे दाखिल होना चाहिये था। हाँ, यदि वैसा न करनेके लिये कोई ख़ास वजह हो तो वह उस वजहको लिखकर अपनी ही अदालतमें उस मुकद्दमेको सुन सकता है।

नालिशों और मुकद्दमोंका दायर किया जाना

पञ्चायतोंमें जो नालिशें दायर की जाती हैं उनमें नीचे लिखे अनुसार फीस देनी पड़ती है—

(क) दस रुपये तककी नालिशोंके लिये ।)

(ख) दस रुपयेसे अधिक पच्चीस रुपयेतककी नालिशोंके लिये ।।)

फौजदारीके हर मुक़द्दमेकी बाबत ।) देने पड़ते हैं। इसके सिवा हर गवाह, हर मुद्दआइलेह और हर मुलाज़िमके नाम समन जारी करनेके लिये –) बतौर तलबानेके लिया जाता है। यह –) उस चौकीदारको दिया जाता है जो समनकी तामील करता है। चौकीदार यदि न मिल सके तो कोई भी आदमी समन ले जा सकता है।

नालिश या मुक़द्दमा दायर करनेके लिये पञ्चायतके सरपंचके सामने हाज़िर होकर तहरीरी या ज़बानी दरख़ास्त देनी पड़ती है और फीस अदा करनी पड़ती है। फीस अदाकी जानेपर उसकी रसीद मिलती है। सरपंच नालिश या दावेको पञ्चायतके रजिस्टरमें दर्ज कर लेता है और बता देता है कि कब किस वक्त, दरख़ास्त सुनी जायगी। वक्त मुक़र्ररपर पञ्च इकट्ठे होते हैं। कम से कम तीन पंच इकट्ठे हो जानेपर दरख़ास्तपर विचार किया जाता है। उस वक्त दरख़ास्त देनेवाला भी हाज़िर रहता है। यदि पञ्चोंने समझा कि नालिश या दावा ठीक नहीं तो वह उसी वक्त ख़ारिज कर दिया जाता है। ठीक होनेकी हालतमें मुद्दआइलेह या मुलज़िमके नाम समन निकाले जाते हैं, पेशीकी तारीख़ मुक़र्रर की जाती है और मुद्दई या मुस्तग़ीसको उसकी इत्तिला दी जाती है

पञ्चायत गवाहोंको भी तलब कर सकती है और दस्तावेज वगैरह पेश करनेके लिये भी लोगोंको तलब कर सकती है।

अगर कोई मुलजिम या मुद्दआइलेह समन जारी होनेके वक्त पञ्चायतके हलकेके बाहर हो तो समन जिलेके हाकिम या पञ्चायत अफसरके पास भेज दिया जाता है। वह उसे अपनीही अदालतका समन समझकर उसकी तामील करा देता है।

कोई औरत अपनी मर्जीके खिलाफ पञ्चायतके सामने हाजिर होनेके लिये मजबूर नहीं की जा सकती।

फरीकैनके लिये यह लाजमी नहीं कि वे असालतन ही पञ्चायतके सामने पैरवीके लिये हाजिर हों। अगर वे चाहें तो इस कामके लिये अपने नौकर, मुनीम, गुमाश्ता, किसी कुटुम्बी या दोस्तको भेज सकते हैं। वकील, मुख्तार या कानून-पेशा कोई और आदमी पञ्चायतके सामने किसी नालिश या मुकद्दमेकी पैरवी नहीं कर सकता।

नालिशों और मुकद्दमोंका सुना जाना

पञ्चायत नालिशों और मुकद्दमोंको उसी तरह सुन सकती है जिस तरहकी सरकारी अदालतें सुनती हैं। मुलजिम या मुद्दआइलेहसे वह जवाब तलब करती है और सबूत और सफाईके गवाहोंकी शहादत लेती है। जो बयान उसके सामने होते हैं उनका सारांश-मात्र सरपञ्च अपने रजिस्टरमें लिख लेता है। जरूरत होनेपर मामले मुल्तवी भी कर दिये जाते हैं; पर कानून कहता है कि जहांतक हो सके पंचायतोंको फैसले जल्द सुना देने चाहिये; व्यर्थ तूल न देना चाहिये। मुलजिम और मुद्दआइलेह-

की गैरहाजिरीमें भी पंचायत अपना फैसला दे सकती है, मगर फौजदारीके मामलोंमें यह लाजमी है कि कम-से-कम एक दफे मुलजिम हाजिर होकर अपने ऊपर लगाया गया इलजाम सुने और यदि कुछ जवाब रखता हो तो दे। समनकी बाकायदा तामील हो जानेपर भी यदि वह पंचायतके सामने हाजिर न आवे तो रिपोर्ट की जानेपर जिलेका हाकिम उसे जबरन हाजिर करानेकी कार्रवाई कर सकता है।

पञ्चायतके किये हुए फैसलोंकी अपील नहीं। हां, यदि कुछ गैर-कानूनी कार्रवाई हुई हो तो जिलेके हाकिमको दरख्वास्त देनेपर "नजरसानी" जरूर हो सकती है। और सब हालतोंमें पञ्चायतके फैसले कतई होते हैं। जजों और हाईकोर्टोंके फैसले मंसूख हो सकते हैं, पञ्चायतोंके नहीं।

नालिशोंमें डिगरी देनेपर पञ्चायतें, ६) सैकड़े सालानाके हिसाबसे डिगरीकी तारीखसे रुपया अदा होनेतक सूद भी दिला सकती हैं। वे चाहें तो डिगरीके रुपयेको किस्तोंमें अदा करनेका हुक्म भी दे सकती हैं। डिगरीका रुपया यदि एक महीने के अन्दर अदा न किया जाय तो जिलेके हाकिमको लिखनेपर वह बकाया मालगुजारीके तौरपर जबरन वसूल किया जा सकता है।

फौजदारीके मुकदमोंमें किये गये जुरमानेको अदा करनेकी मीयाद १० दिन है। यदि उस दरमियानमें रुपया न अदा किया गया तो कलेक्टर या डेपुटी कमिश्नरको लिखनेसे वे लोग उसे

भी जबरन वसूल कराकर पञ्चायतमें जमा करा देते हैं।

मुकद्दमों या नालिशोंके दौरानमें उनका फैसला फरीकैनकी रजामन्दीसे कसम या हलफपर भी किया जा सकता है। यदि फरीकैन आपसमें कोई समझौता कर लें और मुकद्दमा या नालिश उठा लेना चाहें तो उनकी ऐसी दरख्वास्तको भी पञ्चायत चाहे तो मंजूर कर सकती है।

मुकद्दमा सुनते वक्त अगर पंचायतको यह मालूम हो जाय कि मामला सङ्गीन है। अतएव जो सजा वह दे सकती है वह मुजरिमके लिये काफी न होगी तो वह मुकद्दमेकी रिपोट जिलेके हाकिमको कर सकती है। इस हालतमें मुकद्दमा पञ्चायतसे उठकर सदर में या किसी ऐसी अदालतमें जो उसे सुननेका अधिकार रखती हो, चला जायगा।

पंचायतोंमें सबसे बड़ी बात यह है कि इन्साफ करनेकी सारी जिम्मेदारी पञ्चोंपर छोड़ दी गयी है। पञ्चायत एक्टमें जो कुछ लिखा है उसे छोड़कर पञ्चायतें और किसी कानूनकी पाबन्द नहीं। इसीसे पञ्चायतोंको हिदायत है कि धर्म्म और ईमानको वे हाथसे न जाने दें। शहादतकी वे वहींतक परवा करें जहांतक कि धर्म्म, न्याय या इन्साफ उन्हें इजाजत दें। जिस मामलेकी सचाईकी वे कायल हैं उसे झूठी शहादतोंके आधारपर वे झूठ न समझ लें; क्योंकि पञ्चायतोंके लिये कानून शहादतकी पाबन्दी लाजिमी नहीं। पञ्चायतोंके पञ्च पास-पड़ोसकी हालत, मामलों-मुकद्दमोंकी असलियत और फरीकैनके चाल-

चलन आदिसे पूरी जानकारी रखते हैं। अतएव उस जानकारी से फायदा उठाकर उन्हें दूधका दूध और पानीका पानी अलग कर देना चाहिये। यह बहुत बड़ी बात है। पर खेद है, इस तरह-के पञ्च मुश्किलसे मिल सकते हैं, यह बात लेखक अपने निजके तजरुबेसे कह सकता है।

पञ्चायतोंके विशेषाधिकार

अगर कोई पञ्चायत अच्छा काम करे, उसके सरपञ्च और पञ्च विशेष योग्य साबित हों, दरख्वास्त देनेपर ज़िलेका हाकिम सिफ़ारिश करे तो गवर्नमेंट उस पञ्चायतके अधिकार बढ़ा सकती है। ऐसी पञ्चायतें—

(१) पचास रुपये मालियततककी नालिशें सुन सकती हैं।

(२) बीस रुपयेतककी कीमतकी चीज़ चोरी जानेपर चोरी-के जुर्मके दावे ले सकती हैं।

(३) बीस रुपयेके नुकसान या घाटेके मुआविज़ेके मुक़द्दमों की समात कर सकती हैं।

(४) फ़ौजदारीके और मुक़द्दमोंमें बीस रुपये तक या जो नुक़सान या घाटा हुआ हो उसकी दूनी रक़म तक जुर्माना कर सकती हैं।

(५) ऐक्ट मदाख़िलत बेजा मवेशीके अनुसार दस रुपये तक और ऐक्ट सफ़ाई और तन्दुरुस्तीके अनुसार दो रुपये तक जुर्मानेकी सज़ा दे सकती हैं।

फुटकर बातें

मुकद्दमों और नालिशोंकी फीस, जुर्माने और मुआविजेका रुपया, और ऐसी रकमें जो गवर्नमेंट या और कोई दे, सब पञ्चायतके कोशमें जमा होती रहेंगी। यह रुपया पंचायतके हलकेकी सफ़ाई वग़ैरह तथा उनमें रहनेवालोंकी बेहतरीके और कामों—उदाहरणार्थ नालोंपर पुल बनवाने कूएँ और तालाब खुदवाने या उनकी मरम्मत कराने, तथा आम रास्तोंकी मरम्मत और सफ़ाई में ख़र्च किया जायगा। मगर ख़र्च करनेके पहले हाकिम-ज़िला या पञ्चायत अफ़सरकी मंजूरी दरकार होगी।

क़ानूनकी रू से पञ्चायतोंका यह कर्तव्य माना गया है कि वे निश्चित नियमोंके अनुसार अपने हलकेमें शिक्षाकी उन्नतिके लिये लोगोंकी तन्दुरुस्ती क़ायम रखनेके लिये पानीकी कमी दूर करनेके लिए और सर्वसाधारणके काम आनेवाली जमीनों और इमारतोंकी मरम्मत वग़ैरहके लिये यथाशक्ति प्रबन्ध करें।

यदि गवर्नमेंट हुक्म दे तो पंचायतोंका यह भी कर्त्तव्य होगा कि वे जरूरत पड़नेपर सरकारी उहदेदारों और अहलकारोंको उनके काममें मदद दें। अपने जिलेके डिस्ट्रिक्ट बोर्डके साथ मिलकर काम करनेके लिये भी वे कानूनन बाध्य की जा सकती हैं।

ये पंचायतें एक प्रकारकी सरकारी अदालतें समझी गयी हैं और इनके पंच सरकारी मुलाजिम (*Public Servants*) करार दिये गये हैं। उनके कामोंमें रुकावट डालने और बेजा दस्त-

न्दाजी करनेवालोंपर मुकद्दमा चलाया जा सकता है और उन्हें ५०) तक जुर्मानेकी सजा दी जा सकती है।

किसी पञ्च या पंचायतके खिलाफ, उसके किसी कामकी बाबत, न कोई दीवानी कारवाई की जा सकती है और न कोई फौजदारी मुकद्दमा ही चलाया जा सकता है। शर्त यह है कि उसने अपने अधिकारोंका बर्ताव नेकनीयती और साफदिलीसे किया हो।

किसी मैजिस्ट्रेटके हुक्मसे फौजदारीके मामलोंमें पंचायतें मौकेपर तहकीकात भी कर सकती हैं और हाकिम-मालके हुक्मसे कानून आराजीसे सम्बन्ध रखनेवाली जाँच भी कर सकती हैं। अब तो गवर्नमेंट पंचायतोंके अधिकार दिन-पर-दिन और भी बढ़ा रही है। उसने अब ऐसे कायदे बना दिये हैं जिनके मुताबिक चोरीके मामूली हादसोंकी रिपोर्ट भी चौकीदार पंचायतोंहीको करते हैं। पंचायतें यदि मुनासिब समझती हैं तो पुलिस-स्टेशनके अफसरको उसकी खबर करती हैं और नहीं समझतीं तो नहीं करतीं। दुर्घटनाओंके कारण हुई मौतों और खुदकुशीके मामलोंतककी जाँच अब पंचायतोंहीको मौकेपर जाकर करनी पड़ती है। उन्हें नकशे मिले हुए हैं। उनकी वे खानापूरी करती हैं और अपनी रिपोर्ट थानेको भेजती हैं। ऐसे मामलोंमें पुलिस तभी तहकीकातके लिये आती है जब पंचायतें उसके आनेकी जरूरत बताती हैं।

यहाँतक लिखी गयी बातोंसे ज्ञात होगा कि ये देहाती पंचा-

यतें बड़े कामकी चीज हैं। यदि पंच ईमानदार हों और अपने कर्त्तव्यका पालन करें तो उनके हलकेमें रहनेवाले देहातियोंको बहुत लाभ पहुँच सकता है। मुंसिफी अदालतें दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह कोस दूर हैं। दस-बीस रुपयेकी नालिशोंके लिये लोग वहां जाना, व्यर्थ खर्च करना और जेरबारी उठाना नहीं चाहते। पंचायतोंमें नालिश करनेसे उनका रुपया भी नहीं डूब सकता और अनेक कष्टोंसे भी उनका परित्राण हो सकता है। इसी तरह फौजदारीके मामलोंमें भी पंचायतें निर्बलोंकी बहुत-कुछ रक्षा दुष्टों और दुर्मदोंसे कर सकती हैं। सजा पानेके डरसे ऐसे आदमियोंकी शरारतें यदि समूल ही नहीं दूर हो जातीं तो उनका बहुत-कुछ प्रतिबन्ध अवश्य ही हो जाता है।

[जनवरी १९२८]

१८

किसानोंका संघटन

बिखरी हुई चीजोंकी व्यवस्था करना, उन्हें एक सूत्रमें बाँधना, नियमपूर्वक उन्हें किसी क्रमसे रखना सङ्गठन (सङ्घटन) कहाता है। संहित और समाहार शब्द जिस अर्थमें प्रयुक्त होते हैं उसी अर्थमें आज-कल सङ्गठनका प्रयोग होता है। किसी कार्य्यविशेषकी सिद्धि अथवा किसी फल विशेषकी प्राप्तिके लिए कुछ मनुष्योंका समुदाय यदि नियमानुसार परस्पर सम्बद्ध हो जाय—आपसमें मिल जाय अर्थात् एका कर ले—तो कहेंगे कि उन लोगोंने अपना सङ्गठन कर लिया—वे परस्पर गँठ गये। इस एके, इस सङ्गठन, इस गँठ जानेमें बड़ा बल है। जिन बिखरी हुई चीजोंका कुछ भी महत्त्व नहीं—जो छूनेसे भी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं—वही जब परस्पर गंठ जाती हैं तब उनमें अद्भुत शक्तिका संचार हो जाता है। सङ्गठन-व्यवस्थाकी महिमाका विशेष ज्ञान यद्यपि हमें पश्चिमी देशोंहीकी बदौलत अधिक हुआ है और यद्यपि वहीं उसका प्रबल प्रताप भी देखनेमें आता है, तथापि उसके महत्वसे भारतवासी न तो पहलेही कभी अनभिज्ञ थे और न आज-कल ही अनभिज्ञ हैं। पुराने पण्डितोंने लिख रक्खा है—

तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः ।

तृणके पतले-पतले टुकड़े उँगलीका झटका लगते ही खण्ड-खण्ड हो जाते हैं; परन्तु यदि गाँठकर उन्हींका मोटा रस्सा बना लिया जाता है तो मतवाले हाथीतक उससे बाँधे जा सकते हैं और बाँध लिये जानेपर वे अपनी जगहसे तिलभर भी नहीं हट सकते ।

सङ्गठनकी महत्ता और शक्तिमत्ताका यह हाल है कि उसकी कृपासे इँग्लिस्तानके मज़दूर अभी हालहीमें, ८ महीने तक, उस देशका, तथा उसके अधीनस्थ अन्य देशोंका भी शासन कर चुके हैं । जो लोग हज़ारों हाथ गहरी खानोंके भीतर कोयला खोदते थे, जो लोग एंजिनोंमें ईंधन झोंकते थे, जो स्टेशनों और बन्दरगाहोंपर बारबरदारी करते थे, जो बढ़ई, लुहार, मेमार आदिका काम करके अपनी जीविकाका निर्वाह करते थे उन्होंने सङ्गठन करके वहाँके शासनका सूत्र बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों, नीतिनिपुणों, व्यवसायियों और लखपतियोंसे छीनकर अपने हाथमें कर लिया था ।

उधर रूसको देखिये । वह बहुत बड़ा देश है । कई वर्ष पूर्व वहाँके ज़ार-नामधारी राजेश्वरका आतंक वहीं नहीं, भू मण्डलके अन्यान्य देशोंमें भी छाया हुआ था । उन्हीं सर्व-शक्तिमान सत्ताधीश की सत्ताहीका नहीं, उनके वंशतकका, नामोनिशान मिटाकर, रूसके किसान और सैनिक अब स्वयं ही वहाँका शासन कर रहे हैं । यह सारी करामात सङ्गठनकी है । वहाँके किसान और

सैनिक आपसमें गँठ गये। उन्होंने कहा, जो जुल्म हमपर हो रहे हैं उनका एकमात्र कारण यहाँकी बिगड़ी हुई शासन-व्यवस्था है। उसे तोड़ देना चाहिये। यह निश्चय करके उन्होंने अपना ऐसा संगठन किया जिसकी बदौलत उनका साध्य सिद्ध हो गया।

सङ्गठनकी महिमा जानकर भी हमलोग भारतवासी दुर्भाग्य तथा अन्य कई कारणोंसे भी फूटका शिकार हो रहे हैं। हिन्दू मुसलमानोंसे फूटकर अलग रहना चाहते हैं, मुसलमान हिन्दुओंसे। यहीं तक नौबत रहती तो बात बहुत न बिगड़ती। यहाँ तो एक धर्मावलम्बी भी आपसमें लड़ते-झगड़ते और एक-दूसरेका सिर फोड़ते हैं। शिया-सुन्नीकी नहीं पटती, ब्राह्मण-अब्राह्मणकी नहीं पटती, शाक्त-शैवकी नहीं पटती। इस पारस्परिक संघर्षण और फूटसे अपनीही नहीं, सारे देश और सारे समाजकी हानि हो रही है। उधर हमारी इस मूर्खता और दुर्बलताकी बदौलत चैनकी वंशी और ही लोग बजा रहे हैं। इसका कारण हमारी अविद्या, हमारा अज्ञान, हमारी अदूरदर्शिता और हमारा अविवेक है। एककी नहीं, इन चारोंकी चौकड़ीसे हमारा पिण्ड तभी छूटेगा जब हमारे कृतविद्य, सज्ञान, दूरदर्शी और विवेकशील देशवासी हमें अपने उदाहरणसे एकता और सङ्गठनका महत्व सिखानेकी उदारता दिखावेंगे।

विवेक, दूरदर्शिता, हिताहित-विचारकी शक्ति शिक्षितोंहीमें अधिक होनी चाहिये और शिक्षित मनुष्य ही सङ्गठनकी महिमा अधिक समझ सकते हैं। परन्तु दैवदुर्विपाकसे यहाँके अनेक

सुशिक्षित भी स्वार्थ और धर्म्मान्धताके शिकार हो रहे हैं। उनकी प्रेरणासे वे भी परस्पर मिलकर बहुधा कोई काम नहीं करते। इससे जो हानि हो रही है वह प्रत्यक्ष ही है। उसपर विशद रूपसे टीका-टिप्पणी करनेकी जरूरत नहीं।

अच्छा तो जब शिक्षितोंका यह हाल है तब अशिक्षितोंका कहना ही क्या। वे बेचारे तो अज्ञानके अन्धकूपमें पड़े हुए अपने दुर्भाग्यको रो रहे हैं। संगठन करनेकी शक्ति उनमें कहाँ। इन अशिक्षितोंका अधिकांश देहातमें रहता है। और देहाती ही खेती अधिक करते हैं। इन खेतिहरोंकी संख्या किसीने फी सदी ९०, किसीने ८०, किसीने ७५ निश्चित की है। पिछली संख्याको मर्दुमशुमारीके प्रधान सरकारी अफसरने भी ठीक माना है। अतएव यह कहना चाहिये कि इस देशकी आबादीका अधिक हिस्सा देहातहीमें रहता है और ७५ फी सदी मनुष्य खेती करके ही किसी तरह अपना पेट पालते हैं। इन खेतिहरोंकी आर्थिक अवस्था अत्यन्त क्षीण है। उन्हें मुश्किलसे एक वक्त रोटी मिलती है। जो शासक शिमला और नैनीताल, बम्बई और कलकत्ते में बैठे हुए भारत की सघनता-वृद्धिका स्वप्न देखा करते हैं, पर जिन्होंने अपने शासनकालमें कभी एक दफे भी गाँवोंमें जाकर इनलोगोंकी आर्थिक अवस्थाका निरीक्षण नहीं किया, उनकी बातोंको प्रलाप-मात्र समझकर उनपर ध्यान न देना चाहिये। यह निश्चित है कि इस देशकी आबादीका कम-से-कम ७५ फी सदी अंश दारुण दारिद्र भोग कर रहा है।

यह देश इने-गिने अंगरेजी पढ़े हुए वकीलों, बारिस्टरों, मास्टरों, इन्स्पेक्टरों, दफ्तरके बाबुओं, कौंसिलके मेम्बरों, महाजनों और व्यवसायियोंहीसे आबाद नहीं। आबाद है वह उन लोगोंसे जिनकी संख्या फी सदी ७५ है, जो देहातमें रहते हैं और जो विशेष करके खेतीसे अपना गुजर-बसर करते हैं। अब यदि जन-समुदायकी यह इतनी बड़ी संख्या दुःख, दारिद्र और मूर्खताके पङ्कमें पड़ी सड़ा करे और समर्थ देशवासी उनके उद्धार की चेष्टा न करें तो कितने परितापकी बात है। इन्हीं किसानों या काश्तकारोंहीसे तो देश आबाद है। इन्हींकी दशा यदि हीन है तो समझना चाहिये कि सारे ही देशकी कम-से-कम ७५ फीसदी देशकी तो जरूर ही हीन है। परन्तु हाय यह इतनी मोटी बात हमारे ध्यानमें नहीं आती और हममेंसे जो समर्थ हैं वे भी इन लोगोंकी तकलीफें दूर करनेका यथेष्ट प्रयत्न नहीं करते।

खेतिहरोंका व्यवसाय या पेशा खेती करना है और खेती खेतोंमें होती है। इन प्रान्तोंमें जितनी जमीन खेती करने लायक है, कुछको छोड़कर बाकी सभीके मालिक जमींदार, तअल्लुकेदार, नम्बरदार और राजा-रईस बने बैठे हैं। वे काश्तकारोंसे खूब कसकर लगान लेते हैं, उसे समय-समयपर बढ़ाते भी हैं और कारण उपस्थित हो जानेपर उन्हें उनके खेतोंसे बेदखल भी कर देते हैं। इस सम्बन्धमें कानून जो बने हैं वे काश्तकारोंके सुभीतेके कम और जमींदारोंके सुभीतेके अधिक हैं। अतएव जिस जमीनके ऊपर काश्तकारोंका जीना-मरना अवलम्बित है,

उसके लगान आदिके नियन्त्रणके नियम सुभीतेके न होनेके कारण कभी-कभी काश्तकारोंकी बड़ी ही दुर्गति होती है।

सभी कानून लेजिस्लेटिव कौंसिलके मेम्बरोंकी सलाहसे बनते हैं। किसानोंको भी निर्दिष्ट नियमोंके अनुसार मेम्बर चुननेका अधिकार है। परन्तु सबसे अधिक दुःख, खेद, सन्ताप और परितापकी बात यह है कि जो लोग किसानोंके प्रतिनिधि होकर कौंसिलके मेम्बर हुए हैं उनमेंसे अधिकांश मेम्बरोंने अबतक अपने कर्तव्यका पूर्ण पालन नहीं किया। ये लोग बहुधा अपने एजेन्टोंके द्वारा किसानोंको फुसलाकर और उन्हें सब्ज बाग दिखलाकर उनसे अपने लिये वोट ले लेते हैं, परन्तु काम निकल जानेपर किसी किसानकी भेजी हुई चिट्ठीका जवाब तक नहीं देते, उसकी शिकायत नहीं सुनते और उसके हिताहितका विचार ताकपर रखकर अपने अन्य कामोंके नशेमें मस्त रहते हैं। इस तरह वे अपनी प्रतिज्ञाका पालन न करके, पाप-संचय करते हैं, और प्रकारान्तरसे देश या प्रान्तके $\frac{3}{4}$ अंशको दुःख-दारिद्र्यके गढ़ेमें पड़ा रखकर—उन्हें उससे निकालनेका प्रयत्न न करके प्रायः सारे देशको हानि पहुँचाते हैं। इनको चाहिये कि जिनके ये प्रतिनिधि हैं उनके गांवोंमें दौरा करके अपनी आंखोंसे उनकी दशा या दुर्दशाको देखें और उनके हितके काम करके उनकी दशाको सुधारें। न सुधार सकें तो सुधारनेका उद्योग तो करें। पर इन भले-मानुसोंको अपनी वकालत, बारिस्टरी, मास्टरी आदिसे फुरसत कहां? जिस समय कौंसिलमें किसानोंके सम्बन्धकी किसी बात-

पर बहस होती है उस समय उनके कोई-कोई प्रतिनिधि तो हाजिर तक नहीं रहते। कर्तव्यकी अवहेलनाके लिये भगवान् इन्हें क्षमा करे।

पिछले कौंसिलकी जिन बैठकोंमें अवधका नया कानून लगान बना था उनकी कर्रवाई देखिये। किसानोंके कुछही इने-गिने प्रतिनिधियोंने उनकी तरफसे बहस करके उनके मतलबकी बातें कहीं। बाकीके मेम्बर केवल कौंसिलके कमरेकी शोभा बढ़ाते रहे। यह तो इन प्रतिनिधियोंके कर्तव्यपालनका हाल है। किसान इतने अज्ञ और इतने मूर्ख हैं कि उन्होंने कुछ जमींदारों या तअल्लुकेदारोंको भी अपना प्रतिनिधि करार दिया था। इन दोनों के हितोंका प्रायः वही सम्बन्ध रहता है जो छत्तीस (३६) के अङ्कोंमें तीन और छः का होता है। नतीजा यह हुआ कि किसानोंके अधिकांश प्रतिनिधियोंकी अकर्मण्यता और तअल्लुकेदारोंकी कृपाकी बदौलत उस कानूनमें कुछ ऐसी तरमीमें हो गयीं जो किसानोंके लिये बहुत ही घातक हैं। उदाहरणके लिये दफा ६२ (अ) और ६८ (अ) देखिये। इन दफाओंकी सहायतासे दो वर्षसे अधिकके लिये यदि कोई किसान अपने जोतमेंसे चावल-भर भी जमीन शिकमी उठा दे तो वह बेदखल किया जा सकता है। यह नियम अवधके कोई ५० सदी किसानोंके लिये घातक और जमींदारोंके लिये तरह-तरहसे लाभदायक हैं; क्योंकि अवधमें उच्च कुलके अधिकांश किसान हल-बैल नहीं रखते। वे अपना जोत औरोंको शिकमी उठा देते हैं और इस तरह जो

आधा अन्न और चारा उन्हें मिल जाता है उसीसे सन्तोष करते हैं। ऐसे सभी किसानोंको बेदखल करके उनकी जीविका अपहरण करनेका दरवाजा अब खुल गया है। गवर्नमेंट यह बखूबी जानती है कि नयी तरमीमोंमेंसे कुछ तरमीमें ऐसी हैं जो किसानोंपर गजब ढानेवाली हैं। इसीसे रेवेन्यू बोर्डने अवधके डिपटी कमिश्नरोंको दफा ६२ (अ), ६७ और ६८ (अ) के मुतल्लिक कुछ हिदायतें की हैं। वे इस मतलबसे की गयी हैं कि किसानों पर जियादह सख्ती न की जाय। यह बात कोर्ट आफ वार्ड्सकी पिछली (१९२२-२३) की रिपोर्टमें बोर्ड आफ् रेवेन्यूके सेक्रेटरीने खुद ही कबूलकी है। उन्होंने लिखा है—

"In Order to prevent undue pressure from being brought on the tenants of Oudh estates by Subordinate officials and in order to modify the severity of the sections, the Board have recently issued executive instructions to all Deputy Commissioners regarding the policy to be followed in sanctioning ejectments under sections 62A, and 68A of the Oudh Rent Act as amended,"

कानून बनाते समय तो शायद तअल्लुकेदारोंके मुलाहजेमें आकर गवर्नमेंट चुप रही—उसने ये सब दफाएं "पास" हो जाने दीं। अब पीछेसे वह उनकी सख्ती कम करने चली है। परन्तु करेगी वह कहांतक कम। १९२२-२३ में कोई एक हजार

बेदखलियां फिर भी किसानोंके ऊपर अदालतोंमें दायर हो ही गयीं। यह संख्या गवर्नमेंटने कौंसिलमें २४ मार्च १९२४ को प्रश्न नम्बर ३२ के उत्तरमें बतानेकी कृपा की है। यदि किसान सङ्गठित होते और वे ऐसे ही प्रतिनिधियोंको कौंसिलमें भेजते जो अपने कर्तव्यका पालन दृढ़तापूर्वक करते तो यह दुरवस्था कदापि न होती और उनके मुंहकी रोटी छीनी जानेका उपक्रम इतनी निर्दयतासे कदापि न होता। किसानोंके प्रतिनिधियोंमें बहुतेरे ऐसे भी निकलेंगे जिन्होंने अबतक भी अवधके कानून लगानको एक बार भी न पढ़ा होगा।

नये अर्थात् वर्तमान कौंसिलमें जो लोग किसानोंके प्रतिनिधिकी हैसियतसे गये हैं वे भी अपना कर्तव्य-पालन करते नहीं दिखायी देते। अवधके नये क़ानून-लगानमें जो बातें किसानोंके प्रतिकूल हैं उन्हें मंसूख करानेकी कोशिश उन्हें करनी चाहिये थी। पर आजतक किसीने भी कोई चेष्टा ऐसी नहीं की। और यदि की भी हो तो उसका पता सर्वसाधारणको नहीं।

अब आगरा-प्रान्तके क़ानून-काश्तकारीमें तरमीम होनेवाली है। उसका मसविदा बनकर तैयार भी हो गया है और छपकर प्रकाशित भी हो चुका है। जिस कमिटीके सिपुर्द यह काम किया गया था उसकी रिपोर्ट भी उसीके साथ निकल गयी है। इस रिपोर्ट और इस मसविदेके अनुसारही यदि क़ानूनमें तरमीम हो गयी तो किसानोंको सबसे अधिक लाभ यह होगा कि लगान समयपर देते रहनेसे मृत्यु-पर्य्यन्त वे अपने जोतसे बेदखल न

किये जा सकेंगे। परन्तु इसके साथही उनकी बहुत बड़ी हानि हो जानेके कई दरवाजे भी खुल जायँगे। अबतक १२ वर्ष तक लगातार ज़मीन जोतनेसे उसपर काश्तकारका मौरूसी हक़ हो जाता था। अब यह बात न होगी। उसे अब यह हक़ कभी न मिलेगा और यदि मिल भी सकेगा तो जमींदार साहबकी रजा-मन्दीसे और उन्हें काफी मुआविजा देनेपर ही मिल सकेगा। यह तो बहुत ही कम सम्भव है कि ज़मींदार साहब किसीको खुशीसे मौरूसी काश्तकार बना दें और थोड़ीही दक्षिणासे प्रसन्न हो जायँ। अतएव इस क़ानूनके बन जानेपर किसानोंका बहुत बड़ा हक़ मारा जायगा। जितनी ज़मीनपर इस समय इन लोगोंका मौरूसी हक़ है उसमें भी दिन-पर-दिन कमीही होती जानेके साधन इस क़ानूनके मसविदेमें मौजूद हैं। इस कारण सम्भावना यही है कि ज़मींदार इन लोगोंके मौरूसी खेतोंको मौका मिलते ही छीनते चले जायँगे। सो मौरूसी हक़ अधिक मिलनेके साधन बढ़ाना तो दूर रहा, बन जानेपर यह क़ानून वर्तमान साधनोंका भी संहार क्रम-क्रमसे करता जायगा।

इस दशामें क्या करना चाहिये। कौंसिलमें किसानोंके जो प्रतिनिधि पहले थे उन्होंने अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया। नये कौंसिलमें जो लोग प्रतिनिधि बनकर गये हैं उनसे भी विशेष आशा नहीं। इस कौंसिलको बने एक साल हो चुका। इस इतने समयमें इन लोगोंमेंसे दो-चारको छोड़कर और किसीने भी किसानोंके मतलबका कोई प्रश्न तक गवर्नमेंटसे

नहीं किया। कोई प्रस्ताव उपस्थित करना और क़ानूनमें लाभदायक तरमीम करानेके लिये चेष्टा करना तो दूरकी बात है। अबतक तो इनमेंसे अधिकांश मेम्बर अर्थात् स्वराजी किसानोंके लिये कुछ सुभीतोंकी मांग पेश करना या इसलिये कोई प्रस्ताव ही उपस्थित करना अपने उसूलके ख़िलाफ़तक समझते थे। असहयोगी ठहरे न! बताइये, फिर क्यों आप किसानोंके प्रतिनिधि बने थे? आप अपने उसूलोंकी पाबन्दीके बलपर जबतक स्वराज्य प्राप्त करके किसानोंके दुःख दूर करेंगे तबतक तो वे ख़ुद ही मर मिटेंगे। स्वराज्यका सुख भोगेगा कौन? इन सज्जनोंमेंसे अनेक ऐसे निकलेंगे जो कभी देहातमें नहीं घूमे, जिन्हें किसानोंकी दुर्गतिका बहुत-ही कम ज्ञान है और किसानोंके प्रतिनिधि बननेपर भी जिन्होंने अबतक भी क़ानून-लगान और क़ानून-काश्तकारी वग़ैरहका एक बार भी पारायण नहीं किया। इस दशामें इनसे किसानोंको लाभ पहुँचनेकी बहुत कम आशा है।

इस सूबेसे कितने ही अख़बार हिन्दी, उर्दू और अङ्गरेज़ीमें निकलते हैं। परन्तु कुछ-बहुतही साधारणसे लेखोंके अतिरिक्त, इस सम्बन्धमें कुछ भी विशेष चर्चा नहीं हुई। यह और भी दुःखकी बात है। प्रजाके प्रतिनिधि बननेका दावा करनेवाले इन पत्रोंकी यह असावधानता अथवा असमर्थता बहुतही लज्जाजनक है। प्रान्तके $\frac{3}{4}$ अंशका मरना-जीना जिन क़ानूनोंपर अवलम्बित है उन्हींके सम्बन्धकी चर्चा न करना, अपने कर्त्तव्यकी बहुत बड़ी अवहेलना करना है।

इन सारे दुख-दर्दोंको दूर करनेका सबसे अच्छा इलाज है किसानोंका सङ्गठन। जमींदार और तअल्लुकेदार शिक्षित हैं, श्रीमान् हैं और शक्तिमान् भी हैं। उन्हें सङ्गठनकी उतनी जरूरत न थी, पर उन्होंने भी सूबे अवध और सूबे आगरा, दोनोंमें ही अपना सङ्गठन कर लिया है। इसी सङ्गठनके कारण अवधके क़ानून-लगानमें वे लोग बहुत-कुछ अपनी मनमानी तरमीम करा सके हैं। अब आगरेके क़ानून-काश्तकारीके मसविदेके सम्बन्धमें वे आगराप्रान्तमें भी जगह-जगह मीटिंग कर रहे हैं और जो दो-एक बातें मसविदेमें किसानोंके लाभकी हैं उनपर प्रतिकूल प्रस्ताव पास कर रहे हैं। मसविदा कौंसिलमें विचारार्थ पेश होनेपर वे लोग क्या करेंगे—कैसी राय देंगे—इसमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता। इस दशामें किसानोंके सङ्गठनकी कितनी आवश्यकता है,इसे और अधिक स्पष्ट करके बतानेकी जरूरत नहीं। समयकी कमीके कारण यदि आगरा-प्रान्तके क़ानून-काश्तकारीमें किसान न्यायसंगत फेरफार न करा सकेंगे तो सङ्गठन हो जानेपर आगे तो उनकी चेष्टाओंके विशेष फलवती होनेकी सम्भावना रहेगी। अतएव जो समर्थ और शिक्षित प्रान्तवासी इन अपढ़ और असमर्थ किसानोंको एक सूत्रमें बाँध देंगे उन्होंने मानो अपने प्रांतके ७५ फी सदी आदमियोंके उद्धारका द्वार खोल दिया।

अच्छा तो यह संगठन हो कैसे ? इलाहाबादमें श्रीयुत सङ्गमलाल अगरवाला नामके एक महाशय हैं। आप प्रान्तीय

कौंसिलके मेम्बर हैं। उन्होंने जान पड़ता है, सङ्गठनके महत्त्व-को अच्छी तरह समझ लिया है और इस विषयमें कुछ उद्योग-का आरम्भ भी कर दिया है। उन्होंने किसी संस्थाकी भी संस्थापना शायद कर दी है। उसके कार्यकर्ता घूम-फिरकर व्या-ख्यानों द्वारा किसानोंको उचित सलाह भी दिया करते हैं। आपकी संस्थाकी ओरसे कभी-कभी सङ्गठन इत्यादिके विषयमें लेख भी हिन्दीके समाचार-पत्रोंमें—और यदा-कदा अँगरेजीके पत्र "लीडर" में भी हमारे देखनेमें आये हैं। परन्तु इस चर्चा या उद्योगसे विशेष फलप्राप्तिकी आशा नहीं, क्योंकि वह बहुत निर्बल है। लेख लिखकर अखबारोंमें प्रकाशित करनेसे वे किसानोंतक नहीं पहुँच सकते और पहुँचते भी हैं तो उनकी एक बहुत ही परिमित संख्यातक। फिर किसानोंका अधिकांश अपढ़ है। लेख और समाचार-पत्र उनतक पहुँचे भी तो उनका पहुँचना सर्वथा व्यर्थ है। बड़े-बड़े शहरों या कसबोंमें किसान-सभाएँ कराने और कृषकोपयोगी व्याख्यान दिलानेसे भी किसानोंको बहुत-ही-कम लाभ पहुँच सकता है।

किसानोंको सजग करने, उन्हें उनका कर्तव्य बताने और उनका संगठन करनेके लिये बहुतसे कार्यकर्ताओंकी आवश्यकता है। दस-पाँच व्याख्याताओं, उपदेशकों या एजंटोंसे काम नहीं चल सकता। किसान कुछ इलाहाबाद या बनारस या उनके पास-पड़ोसके जिलोंहीमें तो रहते नहीं। वे तो आगरा और अवधके सभी जिलोंकी देहातमें रहते हैं। उन सभीका संगठन

होना चाहिये और उन सभीको सचेत करना चाहिये । अतएव संगठनका प्रधान दफ्तर इलाहाबादमें रहे । उसके अधीन हर-जिलेके सदर मुकाममें भी एक-एक दफ्तर रहे । इसके सिवा हर जिलेकी हर तहसीलमें एक एक छोटा दफ्तर खोला जाय । फिर हर तहसीलके समुचित बिभाग करके प्रत्येक बिभाग एक-एक उपदेशक या एजेण्टको बाँट दिया जाय। वह देहातमें बराबर दौरा करता रहे । बाजारों, मेलों और बड़े-बड़े गावोंमें वह व्याख्यान देकर सङ्गठनके लाभ बतावे और किसानोंको क्या करना चाहिये, इस बातकी सलाह दे । जब वह देखे कि लोग सङ्गठन के लाभ समझ गये हैं तब छोटे-छोटे कई गाँवोंको मिलाकर, किसी खास गाँवमें जहाँ कुछ पढ़े-लिखे और समझदार किसान रहते हों, एक-एक किसान-सभा खोल दे और सभाको उसके कर्तव्य बतला दे । ये देहाती सभाएँ तहसीलकी सभासे सम्बद्ध रहें और तहसीलोंकी सभाएँ जिलेकी सभासे । जिलोंकी सभाएँ इलाहाबादकी प्रधान सभासे सम्मिलित रहेंहीगी । प्रधान सभासे जो पुस्तकें, पत्र या नोटिसें निकलें वे छोटीसे-भी-छोटी सभाके मेम्बरोंतक पहुँचे । कुछ इन्स्पेक्टर नियत हों जो समय-समय पर दौरा करके इस बातकी जांच करें कि सभाएँ और उपदेशक या एजण्ट अपना काम ठीक-ठीक करते हैं या नहीं ।

ऐसा होजानेपर सारे प्रान्तके किसान एक सूत्रमें बँध जायँगे । फिर उन्हें उनके हक़ मिलते देर न लगेगी । विघ्न-बाधाएँ फिर भी उपस्थित होंगी; परन्तु ७५ फीसदी जन-समुदायकी आवाजके

सामने $\frac{1}{4}$ समुदायके द्वारा उपस्थित किये गये विघ्न कितनी देरतक ठहर सकेंगे ? एक बात और भी तो है। अवशिष्ट $\frac{1}{4}$ जनसमुदायमें भी तो बहुतसे लोग किसानोंके पृष्ठपोषक हैं।

हां, एक बात और भी विचारणीय है। सभाओंकी कार्रवाईमें अवैध-भाव ज़रा भी न घुसने पावे। व्याख्याता और एजण्ट ज़मींदारों और गवर्नमेंटके खिलाफ़ किसानोंको कभी उभाड़ने या उत्तेजित करनेकी चेष्टा न करें। किसानोंको वे केवल उनके हक़ोंका ज्ञान करा दें और सौम्य भाषामें वे यह बता दें कि किन बातों या किन-किन क़ानूनोंसे उन्हें कितना कष्ट है और किनकी किस तरह तरमीम होनी चाहिये। कोई क़ानून कितना ही कड़ा या अन्याय-सङ्कुल क्यों न हो, जबतक उसमें तरमीम न हो जाय तबतक उसके अक्षर-अक्षरके पालनकी सलाह दी जाय और कोई बात ऐसी न की जाय जिससे किसानों और तअल्लुक़ेदारों या ज़मींदारोंमें परस्पर विरोध-भावकी उत्पत्ति या वृद्धि हो।

किसानोंका सङ्गठन विधिपूर्वक और पूर्णभावसे करना सहज नहीं। वह बहुत कठिन है और बहुत बड़े ख़र्चका काम है। परंतु जिस काममे प्रान्तकी तीन चौथाई जन संख्याके दुख-दर्द दूर हो सकते और जिससे उनकी समृद्धि बढ़ सकती है वह उँगली उठा देने, दस-पांच लेख प्रकाशित कर देने या महीने पन्द्रह-रोज़में, किसी जगह सौ-पचास किसानोंको जमा करके उन्हें उनके मतलबकी बातें सुना देनेसे हो भी नहीं सकता। यदि वे लोग

अपढ़ और अशिक्षित न होते तो इस तरह भी थोड़ा-बहुत काम हो जाता। परन्तु उनकी वर्तमान अवस्थामें इन उपायोंसे यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता। यथेष्ट लाभ तभी होगा जब किसानोंका सर्वाङ्गीण सङ्गठन किया जायगा और उसकी सिद्धिके लिये बहुतसे देशभक्त सज्जनोंकी नियुक्ति की जायगी।

इसके लिये हजारों नहीं; शायद लाखों रुपया दरकार हो। अतएव पहले बाबू सङ्गमलाल अगरवालेके सदृश कुछ परोपकार व्रती पुरुषोंको चन्देसे रुपया एकत्र करना चाहिये। जैसे-जैसे रुपया मिलता जाय वैसे-ही वैसे अधिकाधिक कार्यकर्ताओं योजना की जाय और वैसे-ही-वैसे सङ्गठनकार्यके क्षेत्रका विस्तार भी बढ़ाया जाय। पहले जिले जिलेमें सभाएँ खुलें, फिर तहसीलोंमें और उसके बाद देहातमें। इस प्रान्तमें ऐसे हजारों आदमी निकलेंगे जो अधिकारियोंका इशारा पाते ही छोटे-छोटे और कभी कभी व्यर्थके कामोंके लिये भी हजारों रुपया दे डालते हैं। उन्हें समझाने-बुझाने और सङ्गठनके कार्यका महत्त्व बतानेसे क्या यह सम्भव नहीं कि वे इतने महत्वके कामके लिये कुछ दान करें? कार्य चल निकलने और संगठनका कुछ फल भी दृष्टिगोचर होनेसे संगठित सभाओंके किसान भी दो-चार-चार आनेसे सहायता कर सकेंगे। अकाल और बाढ़से पीड़ितोंके लिये, धर्मशालाएँ और मठ-मन्दिर बनानेके लिये, स्कूल और कालेज खोलनेके लिये क्या लोग चन्दा नहीं देते? इन कामोंसे बहुत ही थोड़े आदमियोंको लाभ पहुँचाता है; किसानोंका संगठन हो

जानेसे ३/४ प्रान्तनिवासियोंको लाभ पहुँच सकेगा। यदि दस-बीस भी उत्साही, कार्यकुशल, देशभक्त और परोपकार-रत पुरुष आगे बढ़ें और इस कामका आरम्भ अच्छे ढंगसे कर दें तो धीरे-धीरे काफी रुपया एकत्र हो जाना और होते ही रहना असम्भव नहीं। धन प्राप्ति दुर्लभ नहीं। दुर्लभ हैं सुयोग्य कार्य-कर्त्ता। भगवान उनको सुलभ कर दे!

[दिसम्बर १९२४]

१६

दण्ड-देवका आत्म-निवेदन

हमारा नाम दण्ड-देव है। पर हमारे जन्मदाताका कुछ भी पता नहीं। कोई कहता है कि हमारे पिताका नाम वंश या बाँस है। कोई कहता है, नहीं; हमारे पूज्यपाद पितृ महाशयका नाम काष्ठ है। इसमें भी किसी-किसीका मतभेद है; क्योंकि कुछ लोगोंका अनुमान है कि हमारे बापका नाम बेत है। इसीसे हम कहते हैं कि हमारे जन्मदाताका नाम निश्चयपूर्वक कोई नहीं बता सकता। हम भी नहीं बता सकते। सबके गर्भ-धारिणी माता होती हैं; हमारे वह भी नहीं। हम तो जमींतोड़ हैं। यदि माता होती तो उससे पिताका नाम पूछकर आपपर अवश्य ही प्रकट कर देते। पर क्या करें, मजबूरी है। न बाप, न माँ। अपनी हुलिया यदि हम लिखाना चाहें तो कैसे लिखावें। इस कारण हम सिर्फ अपना ही नाम बता सकते हैं।

हम राज-राजेश्वरके हाथसे लेकर दीन-दुर्बल भिखारीतकके हाथमें विराजमान रहते हैं। जरा-जीर्णों के तो एक-मात्र अवलम्ब हमीं हैं। हम इतने समदर्शी हैं कि हममें भेद ज्ञान जरा भी नहीं—धार्मिक-अधार्म्मिक, साधु-असाधु, काले-गोरे सभीका पाणिस्पर्श हम करते हैं। यों तो हम सभी जगह रहते हैं, परन्तु

अदालतों और स्कूलोंमें तो हमारी ही तूती बोलती है। वहां हमारा अनवरत आदर होता है।

संसारमें अवतार लेनेका हमारा उद्देश्य दुष्ट मनुष्यों और दुर्दान्त बालकोंका शासन करना है। यदि हम अवतार न लेते तो ये लोग उच्छृंखल होकर मही-मण्डलमें सर्वत्र अराजकता उत्पन्न कर देते। दुष्ट हमें बुरा बताते हैं; हमारी निन्दा करते हैं; हमपर झूठे-झूठे आरोप करते हैं। परन्तु हम उनकी कटूक्तियों और अभिशापोंकी जरा भी परवा नहीं करते। बात यह है कि उनकी उन्नतिके पद-प्रदर्शक हमीं हैं। यदि हमीं उनसे रूठ जायं तो वे लोग दिन-दहाड़े मार्ग-भ्रष्ट हुए बिना न रहें।

विलायतके प्रसिद्ध पण्डित जानसन साहबको आप शायद जानते होंगे। ये वही महाशय हैं जिन्होंने एक बहुत बड़ा कोश अंगरेजीमें लिखा है और विलायती कवियोंके जीवन-चरित, बड़ी-बड़ी तीन जिल्दोंमें भरकर, चरित-रूपिणी त्रिपथगा प्रवाहित की है। एक दफे यही जानसन साहब कुछ भद्र महिलाओंका मधुर और मनोहर व्यवहार देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इस सुन्दर व्यवहारकी उत्पत्तिका कारण खोजनेपर उन्हें मालूम हुआ कि इन महिलाओंने अपनी-अपनी माताओंके कठिन शासनकी कृपाहीसे ऐसा भद्रोचित व्यवहार सीखा है। इसपर उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—

"Rod ! I will honour thee
For this thy duty."

अर्थात् हे दण्ड, तेरे इस कर्तव्य-पालनका मैं अत्यधिक आदर करता हूँ। जानसन साहबकी इस उक्तिका मूल्य आप कम न समझिये। सचमुच ही हम बहुत बड़े सम्मानके पात्र हैं; क्योंकि हमीं तुम लोगोंके—मानवजातिके— भाग्य-विधाता और नियन्ता हैं।

संसारकी सृष्टि करते समय परमेश्वरको मानव-हृदयमें एक उपदेष्टाके निवासकी योजना करनी पड़ी थी। उसका नाम है विवेक। इस विवेकहीके अनुरोधसे मानव-जाति पापसे धर-पकड़ करती हुई आज इस उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुई है। इसी विवेककी प्रेरणासे मनुष्य,अपनी आदिम अवस्थामें हमारी सहायतासे पापियों और अपराधियोंका शासन करते थे। शासनका प्रथम आविष्कृत अस्त्र, दण्ड, हमीं थे। परन्तु कालक्रमसे हम अब नाना प्रकारके उपयोगी आकारोंमें परिणत हो गये हैं। हमारी प्रयोग-प्रणालीमें भी अब बहुत कुछ उन्नति, सुधार और रूपान्तर हो गया है।

पचास-साठ वर्षके भीतर इस संसारमें बड़ा परिवर्तन—बहुत उथल-पथल हो गया है। उसके बहुत पहले भी, इस विशाल जगत्में हमारा राजत्व था। उस समय भी रूसमें आज-कल-हीकी तरह मार-काट जारी थी। पोलैंडमें यद्यपि इस समय हमारी कम चाह है, पर उस समय वहाँकी स्त्रियोंपर रूसी-सिपाही मनमाना अत्याचार करते थे और बार-बार हमारी सहायता लेते थे। चीनमें तब भी बंस-दण्डका अटल राज्य था।

टर्कीमें तब भी डण्डे चलते थे। श्यामवासियोंकी पूजा तब भी लाठीहीसे की जाती थी। अफरीकासे तब भी मम्बो-जम्बो (गैंडे-की खालका हण्टर) अन्तर्हित न हुआ था। उस समय भी वयस्का भद्रमहिलाओंपर चाबुक चलता था। पचास-साठ वर्ष पहले संसारमें जिस दण्ड-शक्तिका निष्कण्टक साम्राज्य था, यह न समझना कि अब उसका तिरोभाव हो गया है। प्राचीन कालकी तरह अब भी सर्वत्र हमारा प्रभाव जागरूक है। इशारेके तौरपर हम जर्मनीके हर प्रान्तमें वर्त्तमान अपनी अखण्ड सत्ताका स्मरण दिलाये देते हैं। परन्तु वर्तमान वृत्तान्त सुनाने की अपेक्षा पहले हम अपना पुराना वृत्तान्त सुना देना ही अच्छा समझते हैं।

प्राचीन कालमें रोम-राज्य योरपकी नाक समझा जाता था। दण्ड-दान या दण्ड विधानमें रोमने कितनी उन्नति की थी, यह बात शायद सबलोग नहीं जानते। उस समय हम ३ भाई थे। रोमवाले साधारण दण्डके बदले कशा-दण्ड (हण्टर या कोड़े) का उपयोग करते थे। इसी कशा-दण्डके तारतम्यके अनुसार हमारे भिन्न-भिन्न तीन नाम थे। इनमेंसे सबसे बड़ेका नाम फ्लैगेलम (*Flagellum*) मँझलेका सेंटिका (*Sentica*), और छोटेका फेरुला (*Ferula*) था। रोमके न्यायालय और वहाँकी महिलाओंके कमरे हम इन्हीं तीनों भाइयोंसे सुसज्जित रहते थे। अपराधियोंपर न्यायाधीशोंकी असीम क्षमता और प्रभुता थी। अनेक बार प्रभु या प्रभु-पत्नियाँ; दयाके वशवर्ती होकर, हमारी

सहायतासे अपने दासोंके दुःखमय जीवनका अन्त कर देती थीं। भोजके समय आमन्त्रित लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये दासोंपर कशाघात करनेकी पूर्ण व्यवस्था थी। दासियोंको तो एक प्रकार से नङ्गीही रहना पड़ता था, वस्त्राच्छादित रहनेसे वे शायद कशा-घातोंका स्वाद अच्छी तरह न ले सकें। इसीलिये ऐसी व्यवस्था थी। यहींपर तुम हमारे प्रभावका कहीं अन्त न समझ लेना। दासियोंको एक और भी उपायसे दण्ड दिया जाता था। छतकी कड़ियोंसे उनके लम्बे-लम्बे बाल बाँध दिये जाते थे। छतसे लटक जानेपर उनके पैरोंसे कोई भारी चीज बांध दी जाती थी, ताकि वे पैर न हिला सकें। यह प्रबन्ध हो चुकनेपर उनके अङ्गों की परीक्षा करनेके लिये हमारी योजना होती थी। यह सुनकर शायद तुम्हारा दिल दहल उठा होगा और तुम्हारा बदन काँपने लगा होगा। पर हम तो बड़े ही प्रसन्न हैं। ऐसा ही दण्ड दासों को भी दिया जाता था। परन्तु बालोंके बदले उनके हाथ बाँधे जाते थे।

इससे तुम समझ गये होगे कि रोमकी महिलाएँ हमारा कितना आदर करती थीं। परन्तु यह बात वहाँके कर्तृपक्षको असह्य हो उठी। उन्होंने कहा—इस दण्ड-देवका इतना आदर! उन्होंने हमारी इस उपयोगितामें विघ्न डालनेके लिये कोई कानून बना डाले। सम्राट् आड्रियनके राजत्व-कालमें इस कानूनको तोड़नेके अपराधमें एक महिलाको पाँच वर्षका देश-निर्वासन दण्ड मिला था। अस्तु।

अब हम जर्मनी, फ्रांस, रूस, अमेरिका आदिका कुछ हाल सुनाते हैं। ध्यान लगाकर सुनिये। इन सब देशोंके घरों, स्कूलों और अदालतोंमें भी पहले हमारा निश्चल राज्य था। इनके सिवा संस्कारघरों (*Houses of Correcton*) में भी हमारी षोड-शोपचार पूजा होती थी। इन संस्कार-घरों अथवा चरित्र-सुधार-घरोंमें चरित्र और व्यवहार-विषयक दोषोंका सुधार किया जाता था। अभिभावक जन अपनी दुश्चरित्र स्त्रियों और अधीनस्थ पुरुषोंको इन घरोंमें भेज देते थे। वहाँ वे हमारीही सहायता—हमारे ही आघात—से सुधारे जाते थे।

जर्मनीमें तो हम पहले अनेक रूपोंमें विद्यमान थे। हमारे रूप थे कशादण्ड, वेत्रदण्ड, चर्म्मदण्ड आदि। कोतवालों और न्यायाधीशोंको कशाघात करनेके अख़तियारात हासिल थे। संस्कारघरोंमें हतभागिनी नारियोंहीकी संख्या अधिक होती थी। वहाँ बहुधा निरपराधिनी रमणियोंको भी, दुष्टोंके फन्देमें फँसकर, कशाघात सहने पड़ते थे। पहले वे नङ्गी कर डाली जाती थीं। तब उनपर बेत पड़ते थे। जर्मन-भाषाके ग्रन्थ-साहित्यमें इस कशाघातका उल्लेख सैकड़ों जगह पाया जाता है।

फ्रांसमें भी हमने मनमाना राज्य किया है। वहाँके विद्या-लयोंमें किसी समय हमारा बड़ा प्रभाव था। विद्यालयोंमें कोमल-कलेवरा बालिकाओंको भी हमें चूमना पड़ता था। यहाँतक कि उन्हें हमारा प्रयोग करनेवालोंका अभिवादन भी करना पड़ता

था। फ्रांसमें तो हमने पवित्रहृदया कामिनियोंके कर-कमलोंको भी पवित्र किया था। आपको इस बातका विश्वास न हो तो एक प्रमाण लीजिये। "रोमन डि लारोज" नामक काव्यमें कविवर क्रपिनेलेने स्त्रियोंके विरुद्ध चार सतरें लिख मारी हैं। उनका भावार्थ कवि पोपके शब्दोंमें है—

"*Every woman is at heart a rake*" इस उक्तिको सुन कर कुछ सम्माननीय महिलाएं बेतरह कुपित हो उठीं। एक दिन उन्होंने कविको अपने कब्जेमें पाकर उसे सुधारना चाहा। तब यह देखकर कि इनके पंजेसे निकल भागना असम्भव है, कविने कहा—"मैंने जरूर अपराध किया है। अतएव मुझे सजा भोगने-में कुछ भी उज्र नहीं। पर मेरी एक प्रार्थना है। वह यह कि उस उक्तिको पढ़कर जिस महिलाको सबसे अधिक बुरा लगा हो वही मुझे पहले दण्ड दे"। इसका फैसला कोई स्त्री न कर सकी। फल यह हुआ कि कवि पिटनेसे बच गया।

रूसमें भी हमारा आधिपत्य रह चुका है। वहां तो सभी प्रकारके अपराध करनेपर साधारण दण्ड या कशादण्डसे प्राय-श्चित्त कराया जाता था। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या राजकर्मचारी, क्या साधारण जन, सभीको अप-राध करनेपर हमारा अनुग्रह ग्रहण करना पड़ता था। किसान तो हमारी कृपाके सबसे अधिक पात्र थे। उनपर तो,जो चाहता था वही, निशंक और निसंकोच हमारा प्रयोग करता था। हमारा प्रसाद पाकर वे बेचारे चुपचाप चल देते थे और अपना

क्रोध अपनी पत्नियों और पशुओंपर प्रकट करते थे। रूसके अमीरों और धनवानोंसे हमारी बड़ी ही गहरी मित्रता थी। दोष-दमन करनेमें वे सिवा हमारे और किसीकी भी सहायता कभी भूलकर भी न लेते थे। उनका खयाल था कि अपराधियों को अधमरा करनेके लिये ही भगवानने हमारी सृष्टि की है।

रूसमें तो, पूर्वकालमें दण्डाघात प्रेमका भी चिह्न माना जाता था। विवाहिता वधुएं अपने पतियोंसे हमींको पानेके लिये सदा लालायित रहती थीं। यदि स्वामी बीच-बीचमें अपनी पत्नीका दण्ड-दान-नामक आदर न करता तो पत्नी समझती कि उसके स्वामीका प्रेम उसपर कम होता जा रहा है। यह प्रथा केवल नीच या छोटे लोगोंहीमें प्रचलित न थी, बड़े-बड़े घरोंमें भी इसका पूरा प्रचार था। बर्कले नामके लेखकने लिखा है कि रूसमें दण्डाघातोंकी न्यूनाधिक संख्याहीसे प्रेमकी न्यूनाधिकताकी माप होती थी। इसके सिवा स्नानागारोंमें भी हमारा प्रबल प्रताप छाया हुआ था। स्नान करनेवालोंका समस्त शरीर ही हमारे अनुग्रहका पात्र बनाया जाता था। स्टिफेंस साहबने इसका विस्तृत विवरण लिख रक्खा है। विश्वस न हो तो उनकी पुस्तक देख लीजिये।

हमारे सम्बन्धमें तुम अमेरिकाको पिछड़ा हुआ कहीं मत समझ बैठना। वहाँ भी हमारा प्रभाव कम न था। बालकों और बालिकाओंका गार्हस्थ्य जीवन वहां हमारे ही द्वारा नियन्त्रित होता था। प्यूरिटन नामके क्रिश्चियन-धर्मसम्प्रदायके अनु-

यात्रियोंके प्रभुत्वके समय लोगोंको बात-बातमें कशाघातकी शरण लेनी पड़ती थी। क्वेकर-सम्प्रदायको देशसे दूर निकालनेमें अमेरिकाके निवासियोंने हमारी खूब ही सहायता की थी। हमारा प्रयोग बड़े ही अच्छे ढङ्गसे किया जाता था। काठके एक तख्तेपर अपराधी बांध दिया जाता था। फिर उसपर सड़ासड़ बेत पड़ते थे।

अफरीकाकी तो कुछ पूछिये ही नहीं। वहां तो पहले भी हमारा अखण्ड राज्य था और अब भी है। यही एक देश ऐसा है जिसने हमारे महत्त्वको पूर्णतया पहचान पाया है। बच्चोंकी शिक्षासे तो हमारा बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। वहांके लोगोंका विश्वास था कि हमारा आगमन स्वर्गसे हुआ है और हम ईश्वरके आशीर्वादरूप हैं। हम नहीं; तो समझना चाहिये कि परमेश्वर ही रूठा है। मिस्रवाले तो इस प्रवादपर आंख-कान बन्द करके विश्वास करते थे। वहांके दीन-वत्सल महीपाल प्रजा-वर्गको इस आशीर्वादका स्वाद बहुधा चखाया करते थे। इस राज्यमें बिना हमारी सहायताके राज-कर वसूल होना प्रायः असम्भव था। मिस्रके निवासी राजाका प्राप्य अंश; कर, अदा करना न चाहते थे। इस कारण हमें उनपर सदा ही कृपा करनी पड़ती थी। उनकी पीठपर हमारे जितने ही अधिक चिह्न बन जाते थे वे अपनेको उतने ही अधिक कृतज्ञ या कृतार्थ समझते थे।

अफरीकाकी असभ्य जातियोंमें स्त्रियोंके ऊपर हमारा बड़ा प्रकोप रहता था। ज्योंही स्वामी अपनी स्त्रीके सतीत्व-रक्षको जाते

देखता था त्योंही वह हमारी पूर्ण तृप्ति करके उस कुलकलङ्किनीको घरसे निकाल बाहर करता था। कभी-कभी स्त्रियां भी हमारी सहायतासे अपने-अपने स्वामियोंकी यथेष्ट खबर लेती थीं। अफ्रीकाके पश्चिमी प्रान्तोंमें यद्यपि बालक-बालिकाओंपर हमारा विशेष प्रभाव न था तथापि उन्हें हमसे भी अधिक प्रभावशाली व्यक्तियोंका सामना करना पड़ता था। नटखट और दुष्ट लड़कों और लड़कियोंकी आँखोंमें लाल मिर्च मल दी जाती थी। वे बेचारे इस योजनाका कष्ट सहन करनेमें असमर्थ होकर घंटों छटपटाते और चिल्लाते थे। वयस्कोंको तो इससे भी अधिक यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं। वे पहले पेड़ोंकी डालोंसे लटका दिये जाते थे। फिर वे खूब पीटे जाते थे। देह लोहू-लोहान हो जानेपर उस-पर सर्वत्र लाल मिर्चका चूर्ण मला जाता था। याद रहे, ये सब पुरानी बातें हैं। आजकलकी बातें हम नहीं कहते; क्योंकि हमारे प्रयोगमें यद्यपि इस समय कुछ परिवर्तन हो गया है, तथापि हमारा कार्यक्षेत्र घटा नहीं, बढ़ा ही है।

तुम्हारे एशिया-खण्डमें भी हमारा राज्य दूर-दूरतक फैला रहा है। एशिया कोचक (एशिया माइनर) के यहूदियोंमें किसी समय हमारी बड़ी धाक थी। वहाँ हमारा प्रताप बहुत ही प्रबल था। ईसाई-धर्म्म फैलानेमें सेंटपाल नामक धर्माचार्य्यने बड़े-बड़े अत्याचार सहे हैं। वे ४९ दफे कशाहत और ३ दफे दण्डाहत हुए थे। बाइबिलमें हमारे प्रयोगका उल्लेख सैकड़ों जगह आया है।

यहूदियोंकी तरह पारसियोंमें भी हमारा विशेष आदर था।

क्या धनी, क्या निर्धन सभीको यदा-कदा डण्डोंकी मार सहनी पड़ती थी। यह चाल बहुत समय तक जारी रही। तदनन्तर वह बदल गयी। तब माननीय मनुष्योंके शरीरकी जगह उनके कपड़ों पर कोड़े लगाये जाने लगे।

चीनमें तो हमारा आधिपत्य एक छोरसे लेकर दूसरे छोरतक फैला हुआ था। ऐसा एक भी अपराधी न था जिसे सजा देनेमें हमारा प्रयोग न होता रहा हो। उच्च राज-कर्म्मचारियोंसे लेकर दीन-दुखी भिखारियोंतकको, अपराध करने पर हमारे अनुग्रह-का अनुभव प्रत्यक्षरूपसे करना पड़ता था। डण्डकी मार खानेमें उस समय चीनी लोग अपना अपमान न समझते थे। हाँ, हमारे कृपा-कटाक्षसे उन्हें जो यन्त्रणा भोगनी पड़ती थी उसे वे जरूर नापसन्द करते थे। बड़े-बड़े सेना-नायक और प्रान्त-शासक हमारे कठोर अनुग्रहको प्राप्त करके भी अपने उच्च पदों-पर प्रतिष्ठित रहते थे। चीनमें अपराधियों ही तक हमारे कोपकी सीमा बद्ध न थी। कितने ही निरपराध जन भी हमारे स्पर्श-सुखका अनुभव करके ऐसे गद्गद हो जाते थे कि फिर जगहसे उठतक न सकते थे। हमारी पहुँच बहुत दूर-दूरतक थी। चोरों, डाकुओं और हत्यारों आदिको जब कोतवाल और पुलिसके अन्य प्रतापी अफसर न पकड़ सकते थे तब वे हमारी शरण आते थे। उस समय हम उनपर ऐसा प्रेम दरसाते थे कि उछल-उछलकर उनकी देहपर जा पड़ते थे। चीनकी पुरानी अदालतोंमें जितने अभियुक्त और गवाह आते थे वे बहुधा बिना हमारा

प्रसाद पाये न लौट सकते थे ।

चतुर और चालाक चीनके अद्भुत क़ानूनकी बात कुछ न पूछिये। वहाँ अपराधके लिये अपराधी ही जिम्मेदार नहीं। उसके दूरतकके सम्बन्धी भी जिम्मेदार समझे जाते थे। जो लोग इस जिम्मेदारीका खयाल न करते थे उन्हें स्वयं हम पुरस्कार देते थे। चीनमें एक सौ परिवारोंके पीछे एक मण्डलकी स्थापना होती थी। उसकी जिम्मेदारी भी कम न होती थी। अपने फिरकेके सौ कुटुम्बोंका यदि कोई व्यक्ति कोई अपराध करता तो उसके बदलेमें मण्डल सजा पाता था। देव-सेवाके लिये रक्खे गये शूकर-शावक यदि बीमार या दुबले हो जाते तो प्रतिशावकके लिये तत्त्वावधायकपर पचास डण्डे लगते थे।

चीनकी विवाह-विधिमें भी हमारी विशेष प्रतिपत्ति थी। पुत्रकन्याकी सम्मति लिये बिना ही उनका पहला पाणिग्रहण करानेका अधिकार माता-पिताको प्राप्त था। परन्तु दूसरा विवाह वे न करा सकते थे। यदि वे इस नियमका उल्लङ्घन करते तो उनपर तड़ातड़ अस्सी डण्डे पड़ते थे। विवाह-सम्बन्ध स्थिर करके यदि कन्याका पिता उसका विवाह किसी और वरके साथ कर देता तो उसे भी अस्सी डण्डे खाने पड़ते। जो लोग अशौच-कालमें विवाह कर लेते थे उनकी पूजा पूरे एक सौ दण्डाघातोंसे की जाती थी। स्वामीके जीवन-कालहीमें जो रमणियाँ सम्राट् द्वारा सम्मानित होतीं, वे विधवा होनेपर पुनर्विवाह न कर सकती थीं। यदि कोई अभागिनी इस क़ानूनको तोड़ती तो उसे

पुरस्कृत करनेके लिये हमें सौ बार उसके कोमल कलेवरका चुम्बन करना पड़ता।

ये हुईं पुरानी बातें। अपना नया हाल सुनाना हमारे लिये इस छोटेसे लेखमें असम्भव है। अब यद्यपि हमारे उपचारके ढंग बदल गये हैं और हमारा अधिकार-क्षेत्र कहीं-कहीं सङ्कुचित हो गया है, तथापि हमारी पहुँच नयी-नयी जगहोंमें हो गयी है। आजकल हमारा आधिपत्य केन्या, ट्रांसवाल, केपकालनी आदि विलायतोंमें सबसे अधिक है। वहाँके गोरे कृषक हमारी ही सहायतासे हबशी और भारतवर्षी कुलियोंसे बारह-बारह, सोलह-सोलह घण्टे काम कराते हैं। वहाँ काम करते-करते हमारा प्रसाद पाकर अनेक सौभाग्यशाली कुली, समयके पहले ही स्वर्ग सिधार जाते हैं। फीजी, जमाइका, गायना, मारिशश आदि टापुओंमें भी हम खूब फूल-फल रहे हैं। जीते रहें गन्नेकी खेती करनेवाले गौरकाय विदेशी। वे हमारा अत्यधिक आदर करते हैं; कभी अपने हाथसे हमें अलग नहीं करते। उनकी बदौलत ही हम भारतीय कुलियोंकी पीठ, पेट, हाथ आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग छू-छूकर कृतार्थ हुआ करते हैं—अथवा कहना चाहिये कि हम नहीं, हमारे स्पर्शसे वही अपनेको कृतकृत्य मानते हैं। अण्डमन टापूके क़ैदियोंपर भी हम बहुधा जोर-आजमाई करते हैं। इधर भारतके जेलोंमें भी,कुछ समयसे हमारी विशेष पूछ-पाछ होने लगी है। यहाँतक कि एम० ए० और बी० ए० पास क़ैदी भी हमारे संस्पर्शसे अपना परित्राण नहीं कर सकते। कितने ही

असहयोगी क़ैदियोंकी अक्ल हमींने ठिकाने लगायी है।

हम और सब कहींकी बातें तो बता गये, पर इँगलेंडके समाचार हमने एक भी नहीं सुनाये। भूल हो गयी। क्षमा कीजिये। ख़ैर, तब न सही अब सही। सूदमें अब हम भारत-वर्षका भी कुछ हाल सुना देंगे। सुनिये—

लक्ष्मी और सरस्वतीकी विशेष कृपा होनेसे इङ्गलेंड अब उन्नत और सभ्य हो गया है। ये दोनों ठहरीं स्त्रियाँ। और स्त्रियाँ बलवानोंहीको अधिक चाहती हैं, निर्बलोंको नहीं। सो बलवान् होना बहुत बड़ी बात है। सभ्यता और उन्नतिका विशेष आधार पशुबल ही है। हमारी इस उक्तिको सच समझिये और गाँठमें मज़बूत बाँधिये। सो सभ्य और समुन्नत होनेके कारण इँग-लेंडमें अब हमारा आदर कम होता जाता है। तिसपर भी कशादण्डका प्रचार वहाँ अब भी खूब है। कोड़े वहाँ अब भी खूब हैं। कोड़े वहाँ अब भी खूब बरसते हैं। वहांके विद्यालयोंमें हमारी इस मूर्त्तिकी पूजा बड़े भक्ति भावोंसे होती है। हमारा प्रभाव घोड़ेकी पीठपर जितना देखा जाता है उतना अन्यत्र नहीं। इसके सिवा सेनामें भी हमारा सम्मान अभीतक थोड़ा-बहुत बना हुआ है।

भारतवर्षमें तो हमारा एकाधिपत्यहीसा है। भारत अपाहिज है। इसीलिये भारतवासी हमारी मूर्त्तिको बड़े आदरसे अपनी छातीसे लगाये रहते हैं। वे डरते हैं कि ऐसा न हो जो कहीं धन-मानकी रक्षाका एक-मात्र बचा-खुचा यह साधन भी छिन जाय।

इसीसे हमपर उन लोगोंका असीम प्रेम है। भारतवासी असभ्य और अनुन्नत होनेपर भी विलासप्रिय कम हैं। इसीलिये वे ऋषियों और मुनियों द्वारा पूजित हम दण्डदेवके आश्रयमें रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। शिक्षकोंका बेत या कमची, सवारोंका हण्टर, कोचमैनोंका चाबुक, गाड़ीवानोंकी औगी या छड़ी, शुहदोंके लट्ठ, शौकीन बाबुओंकी पहाड़ी लकड़ी, पुलिसमैनोंके डण्डे, बूढ़े बाबाकी कुबड़ी, भँगेड़ियोंके भवानीदीन और लठैतोंकी लाठियां आदि सब क्या हैं? ये सब हमारे ही तो रूप हैं। ये सभी शासन-कार्य्यमें सहायक होते हैं। भारतमें ऐसे हजारों आदमी हैं जिनकी जीविकाके आधार एक-मात्र हम हैं। थाना नामके देवस्थानोंमें हमारी ही पूजा होती है। हमारी कृपा और सहायताके बिना हमारे पुजारी (पुलिसमैन) एक दिन भी अपना कर्तव्यपालन नहीं कर सकते। भारतमें तो एक भी पहले दरजेका मैजिस्ट्रेट ऐसा न होगा जिसकी अदालतके अहातेमें हमारे उपयोगकी योजनाका पूरा-पूरा प्रबन्ध न हो। जेलोंमें भी हमारी शुश्रूषा सर्वदा हुआ करती है। इसीसे हम कहते हैं कि भारतमें तो हमारा एकाधिपत्य है।

बहुत समय हुआ हमने अपने अपूर्व, अलौकिक और कौतूहलोद्दीपक चरितका सारांश "प्रदीप" के पाठकोंको सुनाकर उन्हें मुग्ध किया था। उसे बहुत लोग शायद भूल गये हों। इससे उसकी पुनरावृत्ति आज हमें करनी पड़ी। पाठक, हम नहीं कह सकते कि हमारा यह चारु चरित सुनकर आप भी मुग्ध हुए

या नहीं। कुछ भी हो, हमने अपना कर्तव्य कर दिया। आप प्रसन्न हों या न हों, पर इससे हम कितने प्रसन्न हैं यह हम लिख नहीं सकते।

[मार्च १९२४]